अनुक्रम

1

भूमिका

उर्दू की संस्कृति

यह बात स्वाभाविक ही है कि सौन्दर्य को नज़रअंदाज़ [illegible] रहा। [illegible] रूप में पनपना उनके लिए मुमकिन नहीं था। दिल्ली, गोलकुंडा, बीजापुर, औरंगाबाद, लखनऊ, पटना, हैदराबाद और मुर्शिदाबाद जैसी राजधानियों में कवियों और भाषाविदों के जमाव थे। वह लोग एक एक छोटी-से-छोटी बात पर भी बहस-मुबाहिसे करते थे और एक दूसरे से अधिक कौशल दिखाने का प्रयत्न करते रहते थे। इसलिए सौष्ठव के मानदण्ड भी ऊँचे उठते रहे।

धर्मनिरपेक्ष दृष्टि

उर्दू संस्कृति का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है धार्मिक कट्टरपन का विरोध। हालांकि उर्दू के संरक्षकों एवं पोषणकर्ताओं में अत्यधिक संख्या मुसलमानों की रही है फिर भी इसके कर्मकाण्ड विरोधी रहस्यवादी दृष्टिकोण से—जो लगभग धर्मनिरपेक्षता की सीमा छूने लगता था—आरंभ ही से ग़ैर-मुस्लिम इसकी ओर आकृष्ट रहे हैं। असलियत यह है कि भारत में फ़ारसी शायरी के उद्भव-काल ही में फ़ारसी के सैकड़ों कवि और दर्जनों छन्दशास्त्री, वैयाकरण और गद्य लेखक ऐसे हुए हैं जो मुसलमान नहीं थे। सम्भवतः ऐसा इसलिए हुआ कि सूफ़ियों के धर्म केन्द्रों के दरवाज़े ग़ैर मुस्लिमों के लिए कभी बन्द नहीं रहे और फ़ारसी और उर्दू काव्य-परम्पराओं पर सूफ़ियों का सीधा प्रभाव पड़ा।

अतएव उर्दू आरंभ ही से एकीकरण की भाषा रही है यद्यपि उसका प्रभाव उस समय उच्च और शिक्षित वर्ग ही में था। हम यह भी विश्वास कर सकते हैं कि धर्मनिरपेक्षता के माध्यम के रूप में उर्दू का स्थान अन्य सभी भारतीय भाषाओं से आगे है। अगर हम उत्तर भारत के शहरों और कस्बों में मुसलमानों के मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय घरानों में बोली जानेवाली उर्दू को देखें तो हमें उसमें शुद्ध भारतीय शब्दों, मुहावरों और अन्य अभिव्यक्तियों की बहुता-

यन को देखकर ताज्जुब होता है। केवल गिने-चुने इस्लाम संबंधी शब्द—अल्लाह, रसूल, अली, जन्नत, दोजख आदि—जो छिट-पुट प्रयुक्त होते हैं यह इंगित करते हैं कि यह मुस्लिम परिवारों की बातचीत है। यह बोली जाने-वाली उर्दू उस लिखित और साहित्यिक उर्दू से जिसे रस्मी मौका पर ग़ैर मुस्लिम भी प्रयोग करते हैं कहीं अधिक भारतीयता लिए हुए होती है।

किन्तु उत्तर भारत के मुसलमानों तथा कुछ अन्य जातियों के मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय घरानों में बोली जानेवाली उर्दू में भी प्रवाह और उचित शब्दप्रयोग के मामले में उच्चस्तरीय गद्यलेख में पाया जानेवाला सौष्ठव कम-से-कम साठ प्रतिशत तक होता है। इसके अतिरिक्त मुहावरों और कहावतों का भी खुलकर प्रयोग होता है। इससे स्पष्ट होता है कि पिछली दो-तीन शताब्दियों में उर्दू संवेदना के विभिन्न पहलुओं तथा प्रत्येक स्तर की प्रभावी तेजी और ऊँचे स्तर के दार्शनिक तर्क के लिए प्रभावशील माध्यम तो बन ही गयी है। साथ ही, उसकी एक स्पष्ट संस्कृति भी बन गयी है। इस बात का यह मतलब है कि अगर कोई व्यक्ति रोजमर्रा के जीवन में कामचलाऊ स्तर की उर्दू का प्रयोग करता है तो आशा की जा सकती है कि उसके बर्ताव में ऊँचे दर्जे की भद्रता और मनोरमता होगी। कई कारणों से इस शताब्दी के उत्तरार्ध में उर्दू संस्कृति का ह्रास दिखाई देने लगा है लेकिन यह संस्कृति अब भी हर जगह मिलती है और उत्तर भारत में ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जिन्होंने रस्मी तौर पर उर्दू शिक्षा नहीं पायी फिर भी अपने सामाजिक व्यवहार में शुद्ध उर्दू का प्रयोग करते हैं क्योंकि वे अपने कार्य-कलापों में उच्चस्तर की रुचि की अभि-व्यक्ति करना चाहते हैं।

लखनवी तहज़ीब

यह बताने की जरूरत नहीं है कि किसी समय की संस्कृति के सबसे बड़े केंद्र शासन केन्द्र ही होते हैं। इसका कारण यह है कि शासन केन्द्रों में क्षेत्र की आबादी का श्रेष्ठतम भाग खिंचकर आ जाता है। उर्दू संस्कृति भी मुख्यतः दिल्ली और लखनऊ में और उनसे कुछ कम हद तक अन्य क्षेत्रीय राजधानियों जैसे हैदराबाद, मैसूर, आरकाट, भोपाल, अहमदाबाद, जयपुर, लाहौर, पटना मुर्शिदाबाद और इसी प्रकार की दूसरी जगहों पर पनपी। उनमें भी अन्य स्थानों की अपेक्षा यह संस्कृति लखनऊ में और ज्यादा पनपी। इस बात के लिए स्पष्ट ऐतिहासिक कारण मौजूद थे।

लखनवी तहज़ीब का सूत्रपात उन देहलवी साहित्यकारों ने किया था जो सुरक्षा और सुनिश्चित जीविका की तलाश में लखनऊ पहुँचे थे। यह सही है कि लखनवी तहज़ीब के जड़ पकड़ने तक अवध का राज्य भी ईस्ट इंडिया

कम्पनी के शिकंजे में उसी तरह आ गया था जैसे दिल्ली का राज्य आ गया था लेकिन दिल्ली का शासन जाटों और मराठों के हमलों से भी परेशान था और साथ ही वह आर्थिक रूप से अवध के राज्य की अपेक्षा बहुत कमजोर था इसके अलावा दिल्ली के शिष्ट-वर्ग के दिलों मे नादिरशाह और दुर्रानी के आक्रमणों की विभीषिकाओं की याद ताजा थी। इसीलिए लखनऊ में राजनीतिक शान्ति ने, जिसके साथ ईस्ट इंडिया कम्पनी की जबर्दस्त नीति से पैदा हुई लाचारी भी शामिल थी, लखनऊ मे उन्नीसवी सदी मे दिल्ली से अलग ढग की सस्कृति पनपा दी।

दिल्ली मे रहनेवाला शिष्ट वर्ग आमोद प्रमोद की अपेक्षा धर्म और रहस्यवाद की ओर अधिक उन्मुख हो गया। लखनऊवालो ने आमोद-प्रमोद को प्राथमिकता दी। वहाँ पर नाचने गानेवाली या वारवनिताओं की लोकप्रियता बहुत बढ गयी और उनके कोठे ऐसे प्रभावशाली शिक्षणकेन्द्र बन गए जहाँ सिर्फ अमीर उमरा ही नही बल्कि मध्यमवर्ग के लोग भी आचार-व्यवहार काव्य और सगीत मे ऊँची रुचि पैदा करने के लिए आया करते थे। यहाँ तक कि प्रख्यात विद्वान लोग भी ऊँचे दरजे की गणिकाओं के कोठों पर जाने मे कोई बुराई नही समझते थे।

ऐसा भी नही था कि सगीत और काव्य जैसे सूक्ष्म विषयो ही मे उच्च स्तर क़ायम किया गया हो। जीवन के अन्य कलाक्षेत्रो जैसे पाकशास्त्र, इत्र-फुलेल, वस्त्रनिर्माण, फूलों की सजावट, कशीदाकारी और मिट्टी के बर्तन बनाने की कलाओं मे भी ऊँचे दरजे की नफ़ासत दीख पडती थी। कभी-कभी तो यह नफ़ासत बेवकूफी की हद तक चली जाती थी। कई अमीर बल्कि कई मध्यवर्ग के लोग भी गर्मियो की शामो मे ठडक लाने के लिए अपने आँगनो मे गुलाब-जल का छिडकाव किया करते थे। एक बावर्ची के बारे मे तो यहाँ तक मालूम हुआ है कि जब उसके बीमार मालिक को हकीम ने खिचडी खाने को बताई तो उसने एक ही समय के खाने के लिए इक्कीस तरह की खिचडी और चौदह किस्म की चटनियाँ पेश कर दी।

सामाजिक सम्बधो मे सभ्यता के बहुत ऊँचे मानदण्ड स्थापित कर दिये गये थे। सिर्फ रस्मी जमावो ही मे नही बल्कि घरो के अदर रोज़ की जिन्दगी मे भी प्रत्येक व्यक्ति अपने से बडी उम्र के लोगो का अत्यधिक सम्मान करता था, चाहे बडे छोटे मे, दोनो की उम्र का फासला एक साल ही क्यों न हो। इस सभ्यता मे भी कभी-कभी पागलपन की हद तक ज्यादती कर दी जाती थी। उन्नीसवी शताब्दी के आरभ के कुछ वर्षों मे लखनऊ मे बाँकपन का काफी प्रचलन रहा था। यह बाँके लोग जो अमीरो के लडके होते थे, अपनी पोशाक, चाल-ढाल या

दूसरी बातों में कोई निजी विशेषता जताने लगते थे और इस बात का सान गुमान तक होने पर कि किसी ने उनका अपमान किया है आपे में बाहर हो जाते थे। इसी असहिष्णुता के कारण अक्सर वे लड़ पड़ते थे जिसमें कभी-कभी मौतें भी हो जाया करती थी। लेकिन अगर लड़ाई खत्म होने पर दोनों मामूली तौर पर घायल हुए हों तो उनकी दोस्ती और तकल्लुफ देखते बनता था। एक बांका दूसरे को पहुँचाने उसके घर तक जाता था, फिर दूसरा पहले को पहुँचाने उसके घर तक जाता था और यह सिलसिला घटों देर रात गये तक चलता रहता था।

उत्फुल्लता और मैत्री

लखनवी तहज़ीब की दो खास बातें हँसना, हँसाना और साम्प्रदायिक मैत्री थी। वैसे तो यह दोनों बातें हर उस शहर में पायी जाती थी जहाँ नवाबी या रजवाड़ों का दरबार हो, फिर भी सब से ज्यादा यह लखनऊ में पायी जाती थी। हर संभव अवसर पर लोग, खास तौर पर नौजवान लोग, हाज़िर जवाबी, व्यंग्य और यमक का प्रयोग किया करते थे। लखनऊ का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति इस बात में पारगत होता था कि आमोद-प्रमोद की प्रवृत्ति को सभ्यता के उच्च स्तर पर कैसे निभाया जाये। यहाँ तक कि एक दूसरे पर चोटें भी इस तरह की जाती थी कि चोट से तिलमिलाया शिकार भी हँस पड़े। इसीलिए इस बात से कोई ताज्जुब नहीं होना चाहिए कि उर्दू की—शायद किसी भी भारतीय भाषा की—पहली पत्रिका जिसमें नितान्त परिहास होता था, लखनऊ ही से निकली। इसका नाम था **अवध पंच**।

जहाँ तक साम्प्रदायिक सहिष्णुता का सम्बंध है लखनऊ अब भी सबसे
वो . . के यौवन काल में तो यह सहिष्णता अपनी

थे। मिर्ज़ा साहिब इस बात का बुरा नहीं मानते थे, सिर्फ यह ख्याल रखते थे कि खुद मामा साहिब के सामने पानी न पियें।

मुसलमान अमीर घरानों में शादी-ब्याह या दूसरे सामाजिक अवसरों पर हिन्दू मित्रों के लिए खास रसोईघरों का प्रबंध होता था जिन्हें ब्राह्मण रसोइये चलाते थे। कम-से-कम दो धार्मिक अवसर ऐसे थे जब कुछ हद तक अपने धार्मिक विश्वासों की अवहेलना-सी कर दी जाती थी। मुहर्रम के अवसर पर कई हिन्दू लोग ताज़िए निकालते थे और होली पर कई मुस्लिम नौजवान रंग खेलते थे।

पण्डित बृज नारायण चकबस्त के पूरे व्यक्तित्व में सभ्यता और संस्कृति की यह दुहरी धारा रची-बसी थी।

2

जीवन

कश्मीरी ब्राह्मण

कश्मीरी ब्राह्मणों ने उत्तर प्रदेश के—और स्वभावत ही जम्मू-कश्मीर के भी—सामाजिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अपने उद्गम स्थान पर वे, लगभग नगण्य अल्पमत मे होने पर भी, पिछले जमाने मे लगभग सारे प्रशासनिक और अन्य महत्त्वपूर्ण पद लिए रहे। कुछ समय पहले कश्मीरी ब्राह्मणों की काफी संख्या अपने क्षेत्र से उतर कर मैदानो मे बस गयी, खास तौर पर उस क्षेत्र मे जिसे इस समय उत्तर प्रदेश कहा जाता है। इस क्षेत्र मे यह लोग लगभग आते ही आते समाज के उच्चतम् वर्ग मे पहुँच गये। विशेषत न्यायिक क्षेत्र मे इन लोगों को बहुत सफलता मिली। उत्तर प्रदेश मे बस जानेवाले कई कश्मीरी ब्राह्मण परिवारों जैसे नेहरू, सप्रू, काटजू, गुर्टू, कुजरू, मुल्ला, दर इत्यादि ने क्षेत्रीय और राष्ट्रीय जीवन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

यह लोग आमतौर से मानसिक रूप से सतर्क, बहिर्मुखी प्रवृत्ति वाले और ठाट बाट के शौकीन होते है। इन गुणों की वजह से उनका बड़ी आसानी से मुसलमान और अंग्रेज शासकों से मेलजोल हो गया। उत्तर प्रदेश मे बसनेवाले कश्मीरियो ने उसे अपना घर बना लिया। फिर भी उन्होंने अपनी सांस्कृतिक पहचान कायम रखी और बहुत जल्दी ही उनके जातीय संगठन बन गए थे। इन संगठनों के माध्यम से हमें अब तक कश्मीरियो के व्यक्तिगत जीवन के संकेत मिलते है। जाति की हैसियत से यह लोग सुशिक्षित और काफी सम्पन्न होते है—मुझे मैदानो मे बसनेवाले कश्मीरी ब्राह्मणो मे एक भी अशिक्षित या निर्धन नही मिला। वैसे यह भी सही है कि मारवाड़ियो और गुजरातियो की तरह इन्होंने व्यापार और उद्योग पर आधिपत्य नही किया। इन लोगों की रुचि बुद्धिजीवी पेशों—जैसे वकालत, डाक्टरी, शिक्षा आदि—अपनाने की ओर

१८५७ बगावत के व्यक्तिगत जीवन मे यह सारी बातें शामिल

नारायण की पैदायश फैजाबाद के रयहदेवी मुहल्ले में उनके मामा के घर हुई। मामा का नाम प. लालता प्रसाद था। वे वृज नारायण की माँ के बड़े भाई रहे होंगे तभी उन्होंने अपनी बहन की देख-रेख पितृभाव से की। सन् 1887 में उदित नारायण का देहान्त हो गया। देहान्त के समय अनुमानत उनकी अवस्था चवालीस वर्ष के लगभग होगी क्योंकि यह मालूम हुआ है कि उनकी मौत के लगभग चालीस वर्ष बाद तक उनकी पत्नी जिन्दा रही। सन् 1887 के बाद प. लालता प्रसाद ने, जो उस समय लखनऊ में किसी नौकरी पर थे, अपनी बहन और दोनों भांजों की उस समय तक परवरिश की जब तक भांजे बड़े न हो गये। उनका आवास लखनऊ के कश्मीरी मुहल्ले में था।

वृज नारायण का बचपन आर्थिक कठिनाइयों में बीता। उनके मामा की आय सीमित थी और उन पर दो गृहस्थियों का बोझ था। इसलिए वृज नारायण की स्कूली शिक्षा कुछ देर से शुरू हुई। सन् 1890 में उन्हें उर्दू और फारसी पढ़ाने के लिए एक मौलवी को रखा गया। सन् 1895 में उनका दाखिला कालिमेन मिडिल स्कूल में करा दिया गया जहाँ से 1897 में उन्होंने मिडिल का इम्तहान पास कर लिया।

सन् 1898 में वृज नारायण जुबिली हाई स्कूल में दाखिल हो गये क्योंकि 1897 में उनके बड़े भाई महाराज नारायण की नौकरी म्युनिसिपलिटी में लग गयी थी और संयुक्त परिवार की आर्थिक दशा तब तक सँभल गयी थी। ऐसा मालूम होता है कि सन् 1897 या उसके आसपास यह दोनों भाई अपने मामा से अलग रहने लगे थे। चकवस्त के सारे जीवनीकारों ने दोनों भाइयों के अनकाल तक संयुक्त परिवार का उल्लेख किया है लेकिन महाराज नारायण की नौकरी शुरू होने के बाद प. लालता प्रसाद का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

चकवस्त ने 1900 में मैट्रीकुलेशन की परीक्षा पास की और फिर वे कैनिंग कालेज में दाखिला हो गए जहाँ से उन्होंने 1902 में एफ. ए. किया। एक लम्बी बीमारी के कारण उनकी शिक्षा में एक वर्ष का व्यवधान पड़ गया। सन् 1903 में उन्होंने फिर कैनिंग कालेज में दाखिला ले लिया जहाँ से उन्होंने 1905 में बी. ए. और 1907 में एल. एल. बी. की परीक्षाएँ पास कीं। उसी समय उन्होंने उस समय के प्रख्यात वकील शहंशाह हुसैन रिज़वी के जूनियर के तौर पर वकालत शुरू कर दी।

वृज नारायण चकवस्त की काव्य-प्रतिभा के बारे में कोई मतभेद नहीं है। हम उपयुक्त समय पर यह ब्योरेवार ढंग से देखेंगे कि विभिन्न दृष्टिकोणों से उनका काव्य कितना उत्कृष्ट है। लेकिन यह तय करना मुश्किल है कि काव्य-सर्जना में उनकी रुचि किस हद तक थी। आकार और प्रकार दोनों की दृष्टि से उनके काव्य को देखकर मालूम होता है कि उन्होंने काव्य-सर्जना सरसरी

में शुरू होने के बावजूद चकबस्त आवारापन में नहीं पड़े बल्कि इस आरम्भिक समय को उन्होंने उर्दू और फारसी कविता में उच्च रुचि पैदा करने में लगाया। दर साहिब ने इस होनहार लड़के को काव्य प्रशिक्षण करने की सिफारिश खुद अपने काव्यगुरु मरहमतुद्दौला 'हकीम' से की। यह बात चकबस्त के अपनी पहली नज़्म कान्फ्रेंस के अधिवेशन में पढ़ने के ठीक बाद हुई होगी। इसका कारण यह है कि जन्मजात प्रतिभा और उच्च स्तर के साहित्यकारों का साथ होने पर भी ऐसी नज़्में लिखने के लिए जिनका अभी उल्लेख हुआ है कम-से-कम तीन वर्षों के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। 'हकीम' के पिता उस समय के प्रख्यात कवि 'अमीर' थे। इस प्रकार चकबस्त को शुरू ही से उच्चतम काव्य प्रशिक्षण मिला। 'हकीम' का सन् 1903 में देहान्त हो गया लेकिन इससे पहले वे अपने इस होनहार शिष्य को अपने छोटे भाई अफज़लुद्दौला 'अफज़ल' के सुपुर्द कर गये। सन् 1898 में चकबस्त ने मदिरा की निन्दा में एक नज़्म लिखी जिसे उन्होंने इसे सन् 1903 में अपने नए काव्यगुरु 'अफज़ल' के पास भेजा। उन्होंने इसे चकबस्त के पास इस टिप्पणी के साथ वापस कर दिया कि इसमें संशोधन करने या अधिक उत्कृष्टता पैदा करने की गुंजायश नहीं है। सन् 1900 में चकबस्त ने वर्षा ऋतु पर एक और नज़्म लिखी। शायद वे यह अंदाज़ा लगाना चाहते थे कि वे 'हाली' और 'आज़ाद' द्वारा शुरू की गयी प्राकृतिक कविता की शैली में भी काव्य सृजन कर सकते हैं या नहीं।

इस समय तक चकबस्त में आत्मविश्वास पूरी तरह जाग चुका था और सन् 1901 में उन्होंने उस समय के महान समाज सुधारक और हाई कोर्ट के प्रथम भारतीय जज महादेव गोविंद राणाडे के देहान्त पर एक मर्सिया लिखा। यह मुसद्दस के रूप में है और चकबस्त का लिखा हुआ पहला मर्सिया है।

ऐसा मालूम होता है कि 1902-03 के वर्ष में जब चकबस्त की शिक्षा में व्यवधान आ गया था, उन्होंने अपनी साहित्यिक और सार्वजनिक कार्यवाइयाँ बढ़ा दी थीं। सन् 1903 में उन्होंने कश्मीरी [illegible] और [illegible] की नींव रखी और साथ ही कश्मीरी पण्डितों की [illegible] कान्फ्रेंस के लिए एक और लम्बी नज़्म लिखी। सन् 1904 में [illegible] नज़्में लिखीं। यह दोनों [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

काम समझ कर की। लेकिन इस बात पर भी हम बाद मे बहस करेंगे।

उन्होंने बारह वर्ष की अवस्था मे काव्य-रचना आरंभ कर दी थी और अपने विद्यार्थी-काल ही मे 'हाली', 'इकबाल', 'दाग' और कई अन्य लोगो पर लेख लिखे थे और उन्ही दिनों तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन के विरुद्ध एक बडी कविता लिख डाली थी। इन रचनाओ ने उर्दू साहित्य के इतिहास मे एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। उन्होंने पं. दया शकर 'नसीम' की प्रसिद्ध मसनवी गुलजारे-नसीम का एक नया सस्करण निकाला और उसके लिए एक विस्तृत भूमिका लिखी, जिसमे मसनवी और उसके रचयिता के बारे मे फैली हुई बहुत-सी अफवाहो का खडन किया था। इस सस्करण के छपने के बाद चकबस्त तथा एक तत्कालीन प्रख्यात लेखक और पत्रकार मौलाना अब्दुल हलीम 'शरर' के बीच लम्बा विवाद चला था।

काव्य लेखन का आरंभ

कहा जाता है कि उन्होंने नौ वर्ष की अवस्था मे काव्य रचना आरभ कर दी थी लेकिन यह कविताएँ लिखित रूप में कही नही पायी जाती। किंतु उन्होंने 1894 मे कश्मीरी पडितो की सोशल कान्फ्रेंस के अधिवेशन मे अपनी पहली कविता सुनायी। इस कविता का शीर्षक था 'हुब्बे-कौमी' और इसमें बारह शेर थे। अनुमान यही है कि चकबस्त के शिक्षक या किसी और बुजुर्ग ने उनकी कविता का सशोधन करके उनमे से छदशास्त्र, मुहावरो आदि सबधी त्रुटियाँ दूर कर दी होंगी। लेकिन इस रचना मे इस बात के अदम्य सबूत है कि मूल कविता चकबस्त ही ने लिखी थी। यह पद्यमात्र है लेकिन भाषा-सबधी भूलो का अभाव यह स्पष्ट करता है कि चकबस्त के अतर मे शुरू ही मे लयात्मकता थी।

सन् 1898 मे चकबस्त ने मुसद्दस यानी छ-छ पक्तियों के पदो के रूप मे दो कविताएँ लिखी। उन्नीसवी शताब्दी की अतिम चौथाई मे यह काव्यरूप, जिसे प्रख्यात मरसिया लेखको ने अपनाया था, अत्यत लोकप्रिय हो गया था। पहली कविता मे नौ बन्द थे। यह शीर्षस्थ मरसिया लेखक मीर 'अनीस' की तर्ज पर लिखी गयी थी। इसकी सफलता से उत्साहित होकर उन्होंने कश्मीरी पडितो की सोशल कान्फ्रेंस के तत्कालीन अधिवेशन के लिए बावन बदोवाली एक लम्बी नज्म लिखी। यह उस अधिवेशन मे नही पढी जा सकी लेकिन सन् 1905 के अधिवेशन मे चकबस्त ने इसमे नौ बद और जोडकर इसे पढा था।

चकबस्त इस अर्थ मे सौभाग्यशाली थे कि शुरू ही से उन्हे पं. बिशन नारायण दर का, जो प्रमुख कांग्रेस नेता, सफल वकील और जाने-माने साहित्यकार थे, पथप्रदर्शन मिला था। शायद यही कारण है कि स्कूली शिक्षा के दौर

में शुरू होने के बावजूद चकबस्त आवारापन में नहीं पड़े बल्कि इस अतिरिक्त समय को उन्होंने उर्दू और फारसी कविता में उच्च रुचि पैदा करने में लगाया। दर साहिब ने इस होनहार लड़के को काव्य प्रशिक्षण करने की सिफारिश खुद अपने काव्यगुरु मरहमतुद्दौला 'हकीम' से की। यह बात चकबस्त के अपनी पहली नज़्म कान्फ्रेंस के अधिवेशन में पढ़ने के ठीक बाद हुई होगी। इसका कारण यह है कि जन्मजात प्रतिभा और उच्च स्तर के साहित्यकारों का साथ होने पर भी ऐसी नज़्में लिखने के लिए जिनका अभी उल्लेख हुआ है कम-से-कम तीन वर्षों के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। 'हकीम' के पिता उस समय के प्रख्यात कवि 'असीर' थे। इस प्रकार चकबस्त को शुरू ही से उच्चतम काव्य प्रशिक्षण मिला। 'हकीम' का सन् 1903 में देहान्त हो गया लेकिन इससे पहले वे अपने इस होनहार शिष्य को अपने छोटे भाई अफजलुद्दौला 'अफ़ज़ल' के सुपुर्द कर गये। सन् 1898 में चकबस्त ने मदिरा की निन्दा में एक नज़्म लिखी जिसे उन्होंने इसे सन् 1903 में अपने नये काव्यगुरु 'अफज़ल' के पास भेजा। उन्होंने इसे चकबस्त के पास इस टिप्पणी के साथ वापस कर दिया कि इसमें संशोधन करने या अधिक उत्कृष्टता पैदा करने की गुंजायश नहीं है। सन् 1900 में चकबस्त ने वर्षा ऋतु पर एक और नज़्म लिखी। शायद वे यह अंदाज़ा लगाना चाहते थे कि वे 'हाली' और 'आज़ाद' द्वारा शुरू की गयी प्राकृतिक कविता की शैली में भी काव्य सृजन कर सकते हैं या नहीं।

इस समय तक चकबस्त में आत्मविश्वास पूरी तरह जाग चुका था और सन् 1901 में उन्होंने उस समय के महान समाज सुधारक और हाई कोर्ट के प्रथम भारतीय जज महादेव गोविंद राणाडे के देहांत पर एक मरसिया लिखा। यह मुसद्दस के रूप में है और चकबस्त का लिखा हुआ पहला मरसिया है।

ऐसा मालूम होता है कि 1902-03 के वर्ष में जब चकबस्त की शिक्षा में व्यवधान आ गया था, उन्होंने अपनी साहित्यिक और सामाजिक कार्रवाइयाँ बढ़ा दी थीं। सन् 1903 में उन्होंने कश्मीरी यंगमैन एसोसिएशन और बहार लाइब्रेरी की नींव रखी और साथ ही कश्मीरी पंडितों की सोशल कान्फ्रेंस के लिए एक और लम्बी नज़्म लिखी। सन् 1904 में उन्होंने दो लम्बी नज़्में लिखीं। यह दोनों विरोधी दिशाओं में जा रही थीं। एक में तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्ज़न पर जिन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में भारतीय संस्कृति की निंदा करते हुए कुछ कह दिया था, गहरा व्यंग्य किया गया था। यह कविता 'अवध पंच' के सम्पादक सज्जाद हुसैन की फरमायश पर उस पत्र के लिए लिखी गई थी। दूसरी कविता कवि के सहपाठी और मित्र

टिप्पणियाँ लिखी। अहमद अली 'शौक', 'नक्काद' लखनवी, जामिन कन्तूरी, 'ख्वास्ताहे-नसीम' के छद्म नाम से एक अज्ञात लेखक तथा कुनकुन पत्रिका के सम्पादक ने चकबस्त का पक्ष लिया। हाफ़िज़ जलील हसन 'जलाल', रेक्न रिव्यू में लिखनेवाले एक 'नक्काद', दिल्ली निवासी मज़हरुल्हक़ तथा हकीम बरहम ने चकबस्त की बातों का विरोध किया। इस मामले में 'शौक' साहिब ने, जो मसनवी लेखक की हैसियत से अपनी जगह बना चुके थे, बड़े विशाल हृदय का परिचय दिया। इसके पहले 'शौक' की मसनवियों की चकबस्त ने तीव्र आलोचना की थी लेकिन इस बात का असर 'शौक' साहिब ने अपनी साहित्यिक निर्णय बुद्धि पर नहीं पड़ने दिया।

सन् 1906 में भी चकबस्त ने लेखन कार्य जारी रखा। उन्होंने अपनी एक सुविख्यात नज़्म 'रामायण का एक सीन' लिखी। इसके अलावा बृजमोहन दत्तात्रेय 'कैफ़ी' के 'भारत दर्पण' नामक मुसद्दस की समालोचना भी लिखी। इसी वर्ष उन्होंने कश्मीरी पंडितों के एक धार्मिक मेले 'ऋषिपीर का दम' को बन्द कराने की जी-तोड़ कोशिश की। यह मेला एक कश्मीरी सन्त की स्मृति में होता था जिन्हें हिन्दू लोग ऋषि कहते थे और मुसलमान पीर। इस मेले में कुछ अनुचित बातें होने लगी थीं और चकबस्त ने—जिनकी शिक्षा-दीक्षा विक्टोरिया युगीन नैतिकता के वातावरण में हुई थी—अपनी जाति के लोगों पर इस मेले को समाप्त करने के लिए ज़ोर डाला और अन्त में सफल भी हुए।

किंतु इसी वर्ष उनके लिए एक बड़ी दुखद घटना भी घटी। उनकी पत्नी ने एक लड़के को जन्म दिया और इसके बाद काल कवलित हो गयीं। बच्चा कुछ दिन ज़िंदा रहा और फिर चल बसा।

जीवन के मोड़ पर

तक कायम रहा। चकबस्त की पुत्री श्रीमती महाराज कुमारी का कहना है कि चकबस्त अपनी आमदनी अपनी माँ के हाथ में नहीं अपनी भाभी के हाथ में दिया करते थे। उन दिनों शिष्ट परिवारों का कायदा ही था कि वे संयुक्त परिवारों के रूप में रहते थे। यह संयुक्त परिवार एक ही शहर या क़स्बे में रहनेवाले सगे भाइयों ही के नहीं, चचेरे ममेरे भाइयों के भी होते थे। इन संयुक्त परिवारों की रसोई एक ही होती थी और सबसे बुजुर्ग औरत परिवार की व्यवस्थापिका होती थी। यह परिवार के प्रत्येक सदस्य की जरूरतों का ध्यान रखती थी, उसका आदेश सभी को शिरोधार्य होता था और उसी के हाथ में यह सारा रुपया आता था जो परिवार में शामिल सभी कमाऊ सदस्य संयुक्त परिवार के खर्चे के लिए अपनी ओर से देना चाहते थे।

इसलिए यह खयाल करना बेहूदा बात होगी कि किसी पारिवारिक खींच-तान की वजह से चकबस्त ने रुपया कमाने पर ध्यान लगाया होगा। हो सकता है कि उनकी भाभी ने माँ जैसे वात्सल्य-भाव से उन्हें समझाया हो कि अब तुम्हें कुछ कमाना चाहिए। यह भी संभव है कि उनकी माँ ने उन्हें यह नसीहत की हो, लेकिन ज्यादा गुंजाइश इसी बात की है कि उन्होंने खुद इस बात की जरूरत महसूस की होगी। चुनाचे हम देखते हैं कि दो-तीन बरस तक चकबस्त ने किसी साहित्यिक या सामाजिक कार्य में भाग नहीं लिया। अपने वकालती प्रशिक्षण काल, यानी 1907 के उत्तरार्ध में शायद उन्होंने कानूनी पुस्तकों और शहंशाह हुसैन रिज़वी के आदेश से तैयार किये जानेवाले अभियोग पत्रों, आवेदन पत्रों और जवाबी दावों के अलावा और कुछ लिखा-पढ़ा नहीं होगा।

सन् 1908 में भी स्थिति लगभग वैसी ही रही। इस बरस उनके लिखे हुए चार ही शेर मिलते हैं और यह भी संभव है कि यह 1909 में लिखे गये हों। इनमें से दो शेर तो एक ग़ज़ल के हैं जो 7 मई 1908 को हुए एक मुशायरे के लिए कही गई थी (यह नहीं मालूम कि चकबस्त खुद इस मुशायरे में शामिल हुए थे या नहीं)। बाकी दो शेर स्वतंत्र रचनाएँ हैं और इनसे वह कुण्ठा व्यक्त होती है जो हर नये वकील को अनुभव होती है।

वकालत

चकबस्त ने 1908 के आरंभ से अपने प्रशिक्षक शहंशाह हुसैन रिज़वी के जूनियर की हैसियत से वकालत शुरू की। कुछ महीनों तक उन्होंने अपने सीनियर के कार्यालय ही में मुकदमों की तैयारी की। बाद में उन्होंने अपने कश्मीरी मुहल्ला स्थित मकान में अपना अलग दफ़्तर बना लिया। जाहिर है कुछ समय उनके दफ्तर में लगभग कोई भी नहीं आया होगा। नीचे की रुबाई से मालूम होता है कि चकबस्त खुद अपनी दशा पर हँसते थे:

कुर्सी से अयां[1] जुम्बिशे-यकपाई[2] है
मेज़ ऐसी है जैसे कि पड़ी पाई है
मुंशी का खतर है न मुवक्किल का गुज़र,
आफिस भी अजब गोशए-तनहाई[3] है।

सन् 1909 में चकबस्त की सारी कोशिश वकालत चलाने के लिए रही होगी। इस वर्ष उनकी लिखी हुई सिर्फ एक गजल मिलती है। आम तौर पर इस गज़ल से दस शेर मिलते हैं लेकिन कालीदास गुप्ता 'रिज़ा' ने इसके सग्रह और शेर खोज निकाले हैं। ऐसा मालूम होता है कि तबीयत की रवानी की एक खास हालत में उन्होंने बैठकर सत्ताइस शेरों की गज़ल किसी मुशायरे के लिए लिख दी और उसके दस शेर मुशायरे में पढ़ने के लिए चुन लिये। एक अजब बात यह है कि इस गज़ल में जो उनकी लगभग पहली गज़ल है चकबस्त के कई मशहूर शेरों के अलावा उनका सबसे प्रसिद्ध शेर भी मौजूद है। यह शेर है

जिन्दगी क्या है अनासिर[4] में ज़हूरे-तरतीब[5]
मौत क्या है इन्हीं अजज़ा[6] का परेशां[7] होना।

ऐसा मालूम होता है कि 1910 में उनकी वकालत का कठिनतम समय बीत चुका क्योंकि इस वर्ष उन्होंने चौदह गजलें लिखी या लिखने की कोशिश की। वे गज़ल तभी लिखते थे जब उन्हें किसी मुशायरे में गज़ल पढ़ने का निमन्त्रण मिलता था। इसका मतलब यह है कि वे वकालत की ऐसी स्थिति में पहुँच गये थे जब कि वकील की अदालतों में अच्छी पहचान हो जाती है और उसके लिए जरूरी हो जाता है कि वह अदालतों के बाहर अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाये ताकि उसकी वकालत और चमके। बाद में जब उन्होंने अपनी रचनाओं का संकलन किया तो सख्ती से कमज़ोर शेर निकाल दिये। इसी वजह से हम देखते हैं कि इस वर्ष लिखी हुई गजलों में से छः गजलों में सिर्फ दो दो शेर हैं, एक गजल में तीन शेर हैं और चार गज़लों में चार-चार शेर हैं। इस वर्ष उन्होंने पं. बिशुन नारायण दर पर, जिनके साथ वे बचपन में रहे थे, एक लेख लिखा। उन्होंने एक पत्रिका के लिए एक मुशायरे का वर्णन भी लिखा, जो पं. लालता प्रसाद के निवास स्थान पर हुआ था। शायद यह लालता प्रसाद चकबस्त के मामा ही थे और चकबस्त ने मुशायरे में पढ़ी हुई गज़लों को जमा कर लिया होगा।

सन् 1911 में चकबस्त की साहित्य-सर्जना अपने चरम बिंदु पर पहुँच

---

1. स्पष्ट, 2. एक पाँव पर हिलना, 3. एकांत कोना।
4. तत्त्वों, 5 संघटन प्रकट होना, 6. टुकड़ों, 7 बिखरा हुआ।

सफलता का दौर

सन् 1914 तक चकबस्त को वकालत में काफी सफलता मिल चुकी थी। उन्होंने अपना दफ्तर अपने घर से हटाकर क्रिश्चियन कालेज के सामनेवाली एक इमारत में कर लिया। इसके अगले वर्ष उन्होंने निवास स्थान भी बदल दिया और उनका संयुक्त परिवार एक ज्यादा अच्छे मुहल्ले गोला गंज में आ गया। सन् 1914 में श्रीमती एनी बेसेंट ने होम रूल आंदोलन का श्रीगणेश कर दिया था हालांकि उसका औपचारिक आरंभ एक वर्ष बाद हुआ। चकबस्त इसके सक्रिय समर्थक हो गये। इस वर्ष राष्ट्रवादियों की प्रथम पंक्ति में भी वे आ गए। इस साल उन्होंने कोई गजल नहीं लिखी लेकिन उस समय की राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत दो नज्में लिखी जिनमें एक बहुत लम्बी है। यह लम्बी नज्म दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा बयान करती है। यह चकबस्त की शायद सबसे अधिक लोकप्रिय नज्म है। यह पॅम्फलेट के रूप में प्रकाशित हुई थी और प्रमुख उर्दू साहित्यिक पत्रिका जमाना में भी छपी थी। दूसरी नज्म प्रथम महायुद्ध के लिए विदेश जानेवाले भारतीय सैनिकों की विदाई के बारे में थी। यह याद रखना चाहिए कि उस

समय के सारे राष्ट्रवादियों ने जिनमें महात्मा गांधी भी थे, उस समय के युद्ध प्रयत्नों में इस आशा से सहयोग दिया था कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों द्वारा प्रदर्शित सद्भावना का सम्मान करेगी और होम रूल की माँग को मंजूर कर लेगी।

इसके अगले वर्ष चकबस्त ने चार गजलें लिखी और दो मरसिये। एक मरसिया गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु पर था और दूसरा एक नौजवान रिश्तेदार की मृत्यु पर। मालूम होता है कि इस वर्ष सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियाँ बहुत कम रही। दूसरे यह कि तब चकबस्त ने अपना मकान बदला था और अनुमानतः उन्होंने अपने पेशे की ओर अधिक ध्यान दिया होगा।

सन् 1916 में वे फिर महान राष्ट्रवादी कवि के रूप में उभरे। इस वर्ष उन्होंने होम रूल की माँग के समर्थन में दो कविताएँ, बच्चों के लिए दो देश प्रेम की कविताएँ, तीन मरसिये—जिनमें दो प॰ बिशुन नारायण दर की मृत्यु पर और एक इकबाल नारायण मसल्दान की मृत्यु पर था—लिखे और इसके अलावा दो मुशायरों के लिए गजलें भी लिखी। इसी साल वे एक मुकदमे की पैरवी करने देहरादून गए और उस नगर की प्रशंसा में मसनवी के रूप में एक कविता लिखी। इस वर्ष व कश्मीरी यगमैन एसोसिएशन से भी अलग हो गये। इस संस्था के आरंभिक बारह वर्षों में चकबस्त बराबर इसके साथ सक्रिय रूप रूप से जुड़े रहे थे किंतु इस वर्ष वे इसकी अंदरूनी खींचतान के कारण इससे अलग होने को विवश हो गये। उनके हटने के बाद यह संस्था भी नहीं रही। इसी वर्ष कश्मीरी ब्राह्मण समाज में पहला विधवा विवाह हुआ। आधुनिकतावादी होने के नाते स्वभावतः ही चकबस्त ने इन सुधार करने वालों की बड़ी प्रशंसा की और इस समाज-सुधार की तारीफ करते हुए एक कविता लिखी। इस विवाह के विरोध में पुराणपंथी लोगों ने बड़ा हो-हल्ला मचाया और एक कवि ने चकबस्त की नज्म के हर बंद पर बंद लगाकर जवाबी नज्म लिख दी।

सन् 1917 में भी चकबस्त के लेखन का जोर कायम रहा। उन्होंने छः मुशायरों के लिए गजलें और पाँच नज्में लिखी। आसिफुद्दौला के इमामबाड़े पर उनकी प्रसिद्ध नज्म भी संभवतः इसी साल लिखी गयी थी। इस वर्ष श्रीमती एनी बेसेंट को नजरबंद कर दिया गया और चकबस्त ने बड़ी कटुता के साथ एक नज्म लिखी। होम रूल की माँग के समर्थन में इस वर्ष उन्होंने एक नज्म और लिखी। उन्होंने दो और नज्में लिखी जिनमें दो समारोहों में शामिल न हो सकने पर क्षमायाचना की गयी थी। इसी वर्ष उन्होंने अपनी जाति की लड़कियों के लिए एक शिक्षापरक नज्म लिखी।

इस समय चकबस्त अपने पेशे में पूर्णरूपेण सफल हो चुके थे। सन् 1918 में उन्होंने गोलागंज ही में एक दूसरा मकान किराये पर लिया। यह मकान मारवल हाउस के नाम से प्रसिद्ध था और इसके मालिक मिर्जा समीउल्लाह बेग थे जो उस समय की न्यायव्यवस्था में बड़े उच्च पद पर आसीन थे। यहीं चकबस्त अंत समय तक रहे। यह मकान पं. आनंद नारायण मुल्ला के पिता पं. जगत नारायण मुल्ला के मकान से लगा हुआ था। इस वर्ष अक्तूबर के महीने में उन्होंने अपनी मासिक पत्रिका 'सुबहे-उम्मीद' का प्रकाशन आरंभ किया। यह पत्रिका मुख्यत: राजनीतिक थी लेकिन इसमें एक भाग साहित्यिक भी होता था। चकबस्त इसके प्रत्येक अंक में दो महाकवियों—'गालिब' और 'आतिश'—के कुछ चुने हुए शेर देते थे। इसके सम्पादक चकबस्त और व्यवस्थापक पं. किशन प्रसाद कौल थे। यह पत्रिका तक़रीबन चार वर्ष तक चली। चकबस्त के राजनीतिक और सामाजिक विचार इसमें भली प्रकार देखने को मिलते हैं। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए इस पत्रिका को निर्भीक पत्रकारिता का पूरा उदाहरण कहा जा सकता है। कहा जाता है कि एक बार पं. जगत नारायण मुल्ला ने, जिन्हें चकबस्त अपना बुजुर्ग मानते थे, उन्हें सलाह दी कि वे उत्तेजनापूर्ण लेख न लिखें। चकबस्त ने विनम्रता के साथ किंतु दृढ़तापूर्वक यह सुझाव अस्वीकार कर दिया।

देहावसान

चकबस्त की मृत्यु 12 फरवरी 1926 को हुई। वे एक मुकदमे की पैरवी के लिए रायबरेली गये थे। लगभग दो बजे दिन में वे लखनऊ वापस आने के लिए ट्रेन पर बैठे। उनके साथ प्रतिपक्षी वकील श्री मुहम्मद अय्यूब तथा मुकदमे से सम्बद्ध कुछ अन्य लोग भी थे। ट्रेन रायबरेली में कुछ देर ठहरी रही और तभी इन लोगों ने चाय मँगायी। चकबस्त ने प्याला उठाया लेकिन घूँट भरने के पहले ही उन पर दौरा पड़ा। डाक्टर को बुलाया गया। उसने दाहिनी तरफ का पक्षाघात बताया। उनके बड़े भाई को टेलीफोन से सूचना दी गई। वे सात बजे शाम को रायबरेली स्टेशन पर पहुँचे लेकिन ज्यों ही उनके कमरे में घुसे चकबस्त ने दम तोड़ दिया।

उनके शव को रात 11 बजे लखनऊ लाया गया। दूसरे दिन दाह क्रिया पूरी हुई। उनकी मृत्यु से सारे लखनऊ में शोक छा गया। बार एसोसिएशन में होने वाली शोकसभा में चीफ कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश मि. हज़रे तथा विधि जगत ने उन्हें श्रद्धांजलि दी। उनके सम्मान में सारी अदालतें बन्द रहीं। उस महान कवि की मृत्यु पर कई कवियों ने मर्सिये और नज़्में लिखीं।

श्रीमती महाराज कुमारी बाज़ के कथनानुसार उनके पिता मृत्यु के दो

शराब नहीं पी, वे कभी किसी वेश्या के यहाँ नहीं गये और उन्होंने कभी जुआ नहीं खेला। उनकी किसी रचना में कोई प्रेम-प्रसंग नहीं मिलता।

ऐसा मालूम होता है कि जवानी ही से उन्होंने योगियों की भाँति अपनी शृंगारिक भावनाओं को समेटकर, धर्म और ज्ञान के विकास की ओर मोड़ दिया था। केवल इसी मनोवैज्ञानिक व्याख्या से इस बात का कारण मालूम हो सकता है कि उन्होंने नौजवानी ही में 'दाग' और 'इकबाल' जैसे महारथियों की आलोचना की और 'हाली', और 'शरर' जैसे साहित्यिक महारथियों से टक्करें लीं।

उन्हें तड़क-भड़क पसंद नहीं थी। मिर्जा जाफर हुसैन के, जिन्होंने उन्हें देखा था, कथनानुसार चकबस्त का रहन-सहन सादा था। वे शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा और गोल फेल्ट कैप पहनते थे। उत्तर प्रदेश में बीसवीं सदी के आरंभ में शिष्ट वर्ग के हिंदुओं की यही पोशाक थी। लेकिन उनके कपड़ों की सादगी प्रचलित काट के कपड़े पहनने तक सीमित थी। उनके कपड़े हमेशा बड़े नफीस होते थे। श्रीमती काक का कहना है कि उनके बाहरी और रस्मी कपड़े तो बहुत नफीस होते ही थे, घर पर वे धोती भी बहुत महीन पहनते थे। बनियान भी हमेशा उलटकर पहना करते थे, कहते थे कि उसकी सीवन बदन में चुभती है। साथ ही, वे खाना बहुत बढ़िया और स्वादिष्ट खाते थे यद्यपि उनकी खुराक कम थी।

जहाँ तक भ्रातृप्रेम का संबंध है वे अपने समय के मानदंडों से भी आगे बढ़ गये थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि वे अपनी आमदनी अपनी भाभी के हाथ में देते थे। यह सोचना ठीक नहीं होगा कि उनके भाई घर का खर्च चलाने में कुछ योगदान नहीं करते थे। आखिरकार वे भी म्युनिसिपैलिटी में नौकर थे और नौकरी के अंत में, कार्यभारी अधिकारी (एक्ज़ीक्यूटिव अफसर) हो गये थे और यह कोई मामूली ओहदा नहीं था। बृज नारायण की मृत्यु के बाद उन्होंने संयुक्त परिवार का भरण-पोषण खुद ही किया। हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि अपने जीवन के अंतिम चौदह-पंद्रह बरसों में छोटे भाई ही ने मुख्य रूप से परिवार का पोषण किया था। भ्रातृप्रेम की पराकाष्ठा का एक उदाहरण यह है कि महाराज नारायण की बेटी का नाम बृज कुमारी रखा गया था और बृज नारायण का बेटी का महाराज कुमारी। और यह बात नामकरण तक सीमित नहीं थी। बृज कुमारी बचपन में यही समझती रही कि उनके पिता बृज नारायण ही है। श्रीमती काक का कहना है कि एक बार स्कूल के ठेले के पहुँचने में देर हुई तो बृज कुमारी पैदल ही स्कूल से घर की ओर चल दी। रास्ते में एक सम्भ्रान्त कश्मीरी ने उन्हें देखा तो उसे ताज्जुब हुआ कि यह भले घर की लड़की पैदल क्यों जा रही है? उसने बृज कुमारी

से पूछा, तुम्हारे पिता का क्या नाम है तो उसने उत्तर दिया 'पण्डित बृज नारायण'।

माता का योगदान

दरअसल परिवार में सौहार्द के इस वातावरण का श्रेय दोनों भाइयों की माँ को मिलना चाहिए। बृज नारायण उनसे बहुत प्रेम और उनका बहुत आदर करते थे। श्रीमती काक के कथनानुसार वे रोजाना थोड़ा-सा समय निकालकर उनसे बातें कर लिया करते थे। ध्यान देने की बात यह है कि बृज नारायण अपनी कमाई माँ के नहीं, भाभी के हाथ में रख दिया करते थे। इससे मालूम होता है कि माँ ने घर की सारी व्यवस्था अपनी बड़ी बहू को सौंप दी थी और सारा अधिकार उनके हाथ में दे दिया था क्योंकि उन दिनों मर्द लोग घर के कामकाज में दखल नहीं देते थे।

बृज नारायण अपनी शामें साहित्यिक, सामाजिक या राजनीतिक कार्यों में बिताते थे लेकिन छुट्टियों में वे सारा दिन परिवार के लोगों के साथ बिताते थे, अपने भतीजों-भतीजियों के साथ हमेशा हँसते खेलते रहते थे। बृज नारायण की एकमात्र सन्तान महाराज कुमारी थी लेकिन महाराज नारायण के कई बेटियाँ थीं। बृज नारायण बृज कुमारी को बहुत प्यार करते थे और जब वह रूठ जाती तो उन्हें मनाते थे। श्रीमती काक का कहना है कि एक बार बृज कुमारी को डेंगू बुखार चढ़ा और वे बहुत चिड़चिड़ी हो गयीं। बृज नारायण ने उनकी दशा पर एक हास्यपरक कविता लिखी, जिस पर सभी लोग खूब हँसे, यहाँ तक कि बृज कुमारी भी। श्रीमती काक को उस कविता के यह तीन शेर याद हैं :

> 'डेंगू से है मुझको प्यार—हो जाता है फिर से बुखार
> खिचड़ी खाना खिचड़ी खाना—उसमें थोड़ा तेल मिलाना
> मैं नहीं खाती दूध अनार—मुझे चाहिए चटनी अचार।'

यह देखिए कि यह कविता उर्दू के एक प्रख्यात कवि लिख रहे हैं। इससे यही मालूम होता है कि चकबस्त बच्चों के साथ बच्चे बन जाते थे।

समाज-सुधारक होने के नाते चकबस्त को स्त्रियों से विशेष सहानुभूति थी। इस विषय पर उनकी रचनाओं के अलावा, जिनका उल्लेख बाद में किया जायेगा, उन्होंने कश्मीरी स्त्रियों के लिए एक क्लब कायम किया था। उसका नाम कश्मीरी क्लब था।

यहाँ एक और बात का उल्लेख जरूरी है कि उनकी कथनी और करनी में पूरा तालमेल था, विचारों की स्वच्छता थी। उन्होंने इसे अपने जीवन में प्रकाशित किया और जीवन में उतार दिखाया। श्रीमती काक यह जोर देकर कहती हैं कि पंडित जी अपने परिवार के लड़कों से बहुत घुले-मिले थे लेकिन

शराब नहीं पी, वे कभी किसी वेश्या के यहाँ नहीं गये और उन्होंने कभी जुआ नहीं खेला। उनकी किसी जीवनी में कोई प्रेम-प्रसंग नहीं मिलता।

ऐसा मालूम होता है कि अनजाने ही में उन्होंने योगियों की भाँति अपनी शृंगारिक भावनाओं को संवेदना, तर्क और ज्ञान के विकास की ओर मोड़ दिया था। केवल इसी मनोवैज्ञानिक व्याख्या से इस बात का कारण मालूम हो सकता है कि उन्होंने नौजवानी ही में 'दाग' और 'इकबाल' जैसे महाकवियों की आलोचना की और 'हाली', और 'शरर' जैसे साहित्यिक महारथियों से टक्करें लीं।

उन्हें तड़क-भड़क पसंद नहीं थी। मिर्ज़ा जाफर हुसैन के, जिन्होंने उन्हें देखा था, कथनानुसार चकबस्त का रहन-सहन सादा था। वे शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा और गोल फेल्ट कैप पहनते थे। उत्तर प्रदेश में बीसवीं सदी के आरंभ में शिष्ट वर्ग के हिंदुओं की यही पोशाक थी। लेकिन उनके कपड़ों की सादगी प्रचलित काट के कपड़े पहनने तक सीमित थी। उनके कपड़े हमेशा बड़े नफीस होते थे। श्रीमती काक का कहना है कि उनके बाहरी और रस्मी कपड़े तो बहुत नफीस होते ही थे, घर पर वे धोती भी बहुत महीन पहनते थे। बनियान भी हमेशा उलटकर पहना करते थे, कहते थे कि उसकी सीवन बदन में चुभती है। साथ ही, वे खाना बहुत बढ़िया और स्वादिष्ट खाते थे यद्यपि उनकी खुराक कम थी।

जहाँ तक भ्रातृप्रेम का संबंध है वे अपने समय के मानदंडों से भी आगे बढ़ गये थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि वे अपनी आमदनी अपनी भाभी के हाथ में देते थे। यह सोचना ठीक नहीं होगा कि उनके भाई घर का खर्च चलाने में कुछ योगदान नहीं करते थे। आखिरकार वे भी म्युनिसिपैलिट
नौकर थे और नौकरी के अंत में, कार्यभारी अधिकारी (एक्ज़ीक्यूटिव
हो गये थे और यह कोई मामूली ओहदा नहीं था। बृज नारायण की
बाद उन्होंने संयुक्त परिवार का भरण-पोषण खुद ही किया। हाँ,
कहा जा सकता है कि अपने जीवन के अंतिम चौदह-पंद्रह बरसों में
ही ने मुख्य रूप से परिवार का पोषण किया था। भ्रातृप्रेम की पर
एक उदाहरण यह है कि महाराज नारायण की बेटी का नाम बृज
गया था और बृज नारायण की बेटी का महाराज कुमारी।
नामकरण तक सीमित नहीं थी। बृज कुमारी बचपन में यही सम
उनके पिता बृज नारायण ही हैं। श्रीमती काक का कहना है
स्कूल के ठेले के पहुँचने में देर हुई तो बृज कुमारी पैदल ही
ओर चल दी। रास्ते में एक सम्भ्रान्त कश्मीरी ने उन्हें
रखा कि यह भले घर की लड़की पैदल क्यों जा रही है?

हुसैन रिज़वी का बड़ा आदर करते थे। मिर्ज़ा जाफर हुसैन का कहना है कि चकबस्त से उनकी मुलाकात इकरामुल्ला खां के इमामबाड़े में होनेवाली मजलिस (मुहर्रम के दिनों में इमाम हुसैन के लिए शोक प्रदर्शन करनेवाली शिया मुसलमानों की सभा) में हुई थी। चकबस्त ने उन्हें बताया कि मैं हर साल इस मजलिस में शामिल होता हूँ क्योंकि इसकी स्थापना शहंशाह हुसैन रिज़वी ने की थी।

मिर्ज़ा जाफर हुसैन का यह भी कहना है कि चकबस्त साहित्यिक और वकालती क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय थे। वे लोगों से खुलकर मिलते थे इसलिए सारे प्रमुख व्यक्तियों से उनकी जान-पहचान थी। एक बार दोस्ती हो जाने पर वे रस्मियत खत्म कर देते थे और फौरन खुल जाते थे। सारी खुशमिज़ाजी और बेतकल्लुफी के बावजूद उनका व्यवहार शिष्टता की परिधि के अंदर रहता था। उन्होंने कभी मुंह से कभी कोई गंदा या गंवारू शब्द नहीं निकाला। और न कोई काम ऐसा किया जिससे उनकी प्रतिष्ठा पर आंच आये। सारे खुलेपन के बावजूद उनके अंतरंग मित्रों का क्षेत्र सीमित था और इनमें भी वे हर एक से एक ही स्तर की घनिष्टता नहीं रखते थे, किंतु उनके प्रशंसकों का, जिनमें शायर, वकील, मुवक्किल, प्रमुख नागरिक आदि सभी शामिल थे, बड़ा विस्तृत कार्य क्षेत्र था और धर्म या साम्प्रदायिक भेद उनकी दोस्ती के रास्ते में कभी आड़े नहीं आते थे।

कई अन्य लेखकों का भी विचार है कि चकबस्त हर एक से खुलकर मिलते थे लेकिन 'फिराक' गोरखपुरी ने सन 1941 में, अपनी एक रेडियो वार्ता में सन् 1916 के कांग्रेस अधिवेशन में चकबस्त से हुई भेंट का उल्लेख करते हुए बताया है कि चकबस्त को देखने से ऐसा मालूम होता था कि उनमें किसी व्यक्ति के लिए सहानुभूति या सौहार्द न था। स्पष्ट है, यह मूल्यांकन गलत है। यह जरूर हो सकता है कि मैत्री या शत्रुता के सिलसिले में 'फिराक' के जो अपने मानदंड थे, उन पर चकबस्त पूरे न उतरे हों। 'फिराक' का अपना हाल तो अंत समय तक यह था कि वे किसी भी व्यक्ति से परिचित होने के पांच मिनट के अंदर उसे अपने साथ भोजन के लिए आमंत्रित भी कर सकते थे और उसके साथ अंतरंग परिहास भी शुरू कर सकते थे।

चकबस्त की रुचि इतनी परिष्कृत थी कि वे अश्लीलता कर ही नहीं सकते थे, हाँ, जब वे हँसी-मज़ाक की मनोदशा में होते थे तो कभी-कभी कड़ी चोटें कर जाते थे चाहे उनका ऐसा करने का इरादा न रहा हो। यह पहले ही बताया जा चुका है कि लार्ड कर्ज़न और 'शरर' के बारे में उन्होंने कितनी कड़वी बातें कहीं। उन्होंने दो बड़ों की एक [illegible] में अंग्रेज़ों का भी डट कर मज़ाक उड़ाया। यद्यपि उन्होंने कायस्थों में एक ऐसा [illegible] दिया

उन्होंने उन पर कभी अपने सामाजिक और राजनीतिक विचार नहीं थोपे। हालांकि मुख्य कमानेवाले की हैसियत से वे उस जमाने में, जबकि पारिवारिक अनुशासन जकड़बंदी की सीमा छूने लगा था, आसानी से यह बात कर सकते थे।

वे जीवन के हर क्षेत्र में होशियारी से काम लेते थे। स्वास्थ्य के बारे में उनकी जागरूकता वहम की हद तक पहुँची हुई थी। इसके बावजूद जब कभी सिद्धांतों को कार्य रूप में परिणत करने का समय आता था तो वे जबर्दस्त हिम्मत भी दिखाते थे। उनकी बेटी की बतायी हुई एक घटना से यह बात साबित होती है। उनके एक रिश्तेदार थे बृज किशन गुर्टू, जिनकी पत्नी का क्षय रोग से निधन हो गया था। उस जमाने में क्षय रोग से लोग इतने भयभीत थे कि कोई रिश्तेदार मातमपुरसी को भी नहीं आया, लाश को कंधा देने की बात तो दूर थी। बृज नारायण चकबस्त गुर्टू साहिब के घर गये और कुछ दूसरे नौजवानों को भी हिम्मत दिलायी और इस तरह मरनेवाली की लाश श्मशान तक पहुँच पायी। चकबस्त ने अपनी पत्नी को भी गमी वाले घर में मातम-पुरसी के लिए भेजा।

जब जरूरतमंद लोगों की मदद करने का मौका आता था तो चकबस्त छुप कर यह काम करते थे। श्रीमती काक का कहना है कि उनके परिवार के लोगों को यह तो मालूम था कि उनके मुसलमान मित्रों की संख्या काफी है किंतु यह किसी को नहीं मालूम था कि वे नियमित रूप से कुछ मुसलमान विधवाओं की सहायता करते हैं। यह बात उस समय मालूम हुई जब उनकी मौत के बाद कई मुसलमान विधवाएँ उनके घर आयीं और कहने लगीं कि हम लोग तो एकदम निरुपाय हो गये हैं।

इस तथ्य को देखिए और फिर कुछ तथाकथित साहित्यालोचकों के यह संकेत देखिए कि चकबस्त में साम्प्रदायिकता थी। दरअसल अगर कोई आदमी अपनी जाति के कामों में काफी रुचि ले या अपने सहधर्मियों के कुछ मूल्यों की प्रशंसा करे और साथ ही अपने देश बल्कि मानवमात्र की उन्नति के लिए भी काम करे तो इन बातों में कोई परस्पर विरोध नहीं होता। चकबस्त कश्मीरी ब्राह्मणों के सम्मेलनों में नियमित रूप से भाग लेते थे, उन्होंने अपनी जाति के नवयुवकों और स्त्रियों के लिए क्लब भी बनाये, उन्होंने बनारस हिंदू विश्व-विद्यालय को भी समर्थन दिया और साथ ही होमरूल की मांग के समर्थन में जी-जान से जुट गये।

3

विचार-धारा

प्राथमिकताओं का प्रश्न

प्रत्येक साहित्य-सर्जक के साथ ऐसा नहीं होता कि उसकी निजी विचार-धारा का प्रभाव उसकी रचनाओं के विकास पर पड़े लेकिन चकबस्त के मामले में उनकी विचारधारा जानना ज़रूरी है। कविता उनके लिए मुख्य उद्देश्य नहीं थी। उन्होंने काव्यकला का उपयोग, कम-से-कम वयस्क होने पर, अपने राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अगर वे चाहते तो विपुल लेखन-कार्य कर सकते थे। उन्होंने बारह वर्ष की अवस्था में अपनी पहली कविता सुनायी और सोलह वर्ष की अवस्था में दो कविताएँ लिखीं, जिनमें से एक में 156 शेर थे। सात वर्ष के बाद उन्होंने इसमें 27 शेर और जोड़े। बीस वर्ष से कुछ ही अधिक की अवस्था में उन्होंने अपने को प्रथम श्रेणी का समालोचक साबित कर दिया जिसमें बेहद आत्मविश्वास था। उन्होंने मसनवी 'गुलज़ारे-नसीम' का एक प्रामाणिक संस्करण भी प्रकाशित कर दिया। इस प्रकार की रचनाएँ साधारणतः विद्वान चालीस वर्ष की अवस्था के आस पास किया करते हैं। सन् 1905 में उन्होंने एक बहुत ही परिपक्व कविता 'मज़हबे-शायराना' लिखी और सन् 1906 में उन्होंने अपनी अमर कविता 'रामायण का एक सीन' की रचना की।

ऐसे कवि से यह आशा करना स्वाभाविक है कि वयस्क होने पर वह ग्रंथ पर ग्रंथ लिखेगा, चाहे उसकी मृत्यु उनकी तरह 44 वर्ष की अवस्था ही में हो जाये। लेकिन पाते हम यह हैं कि सन् 1894 से लेकर 1925 तक के 31 बरसों में उन्होंने केवल 2025 शेर लिखे। सन् 1907 से 1909 तक गज़ल के दो-चार शेर छोड़कर उन्होंने कुछ नहीं लिखा। यह बात तो समझ में आती है क्योंकि नये वकील को प्रत्येक क्षण अपने पेशे को जमाने के लिए लगाना पड़ता है। सन् 1910 से 1912 तक उनकी रचना शक्ति में फिर उभार आया किंतु इस समय उन्होंने अपने नये रचना-क्षेत्र यानी ग़ज़ल ही में ज़्यादा काम किया। नज़्म से ग़ज़ल की तरफ़ उनके झुकाव का हमें एक ही कारण दिखाई देता है

था जो हास्यास्पद जैसा था। नजमुद्दीन 'शकेब' साहब के कथनानुसार चकबस्त कचहरी में भी अपना खाली समय साहित्यिक रुचि के लोगों के साथ साहित्य-चर्चा में बिताते थे। एक बार सफ़ीफा अदालत के एक मुंसरिम ने उनसे कहा कि मेरे इस मिसरे पर मिसरा लगाइए: 'रगे-गुल[1] से बुलबुल के पर बांधते हैं'। स्पष्ट है कि मिसरा लगभग निरर्थक था। लेकिन चकबस्त ने झट-से मिसरा लगाकर शेर पूरा कर दिया:

सफ़ीफा अदालत में उल्लू के पट्ठे
रगे-गुल से बुलबुल के पर बांधते हैं।

यह शेर तब इतना लोकप्रिय हुआ कि बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में लगभग हर उर्दू प्रेमी ने यह शेर सुन रखा था हालांकि बहुत ही कम लोगों को मालूम था कि यह किसका शेर है। अक्सर ऐसा भी होता था कि संदर्भ के 'सफ़ीफा अदालत' की जगह 'सुना है कि मेरठ' या 'सुना है अलीगढ़' कर दिया जाता था।

1. फूल की पंखुड़ी की नस।

3

विचार-धारा

प्राथमिकताओं का प्रश्न

प्रत्येक साहित्य-सर्जक के साथ ऐसा नहीं होता कि उसकी निजी विचार-धारा का प्रभाव उसकी रचनाओं के विकास पर पड़े लेकिन चकबस्त के मामले में उनकी विचारधारा जानना जरूरी है। कविता उनके लिए मुख्य उद्देश्य नहीं थी। उन्होंने काव्यकला का उपयोग, कम-से-कम वयस्क होने पर, अपने राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अगर वे चाहते तो विपुल लेखन-कार्य कर सकते थे। उन्होंने बारह वर्ष की अवस्था में अपनी पहली कविता सुनायी और सोलह वर्ष की अवस्था में दो कविताएँ लिखीं, जिनमें से एक में 156 शेर थे। सात वर्ष के बाद उन्होंने इसमें 27 शेर और जोड़े। बीस वर्ष से कुछ ही अधिक की अवस्था में उन्होंने अपने को प्रथम श्रेणी का समालोचक साबित कर दिया जिसमें बेहद आत्मविश्वास था। उन्होंने मसनवी 'गुलज़ारे-नसीम' का एक प्रामाणिक संस्करण भी प्रकाशित कर दिया। इस प्रकार की रचनाएँ साधारणतः विद्वान चालीस वर्ष की अवस्था के आस पास किया करते हैं। सन् 1905 में उन्होंने एक बहुत ही परिपक्व कविता 'मज़हबे-शायराना' लिखी और सन् 1906 में उन्होंने अपनी अमर कविता 'रामायण का एक सीन' की रचना की।

ऐसे कवि से यह आशा करना स्वाभाविक है कि वयस्क होने पर वह ग्रंथ पर ग्रंथ लिखेगा, चाहे उसकी मृत्यु उनकी तरह 44 वर्ष की अवस्था ही में हो जाये। लेकिन पाते हम यह हैं कि सन् 1894 से लेकर 1925 तक के 31 बरसों में उन्होंने केवल 2025 शेर लिखे। सन् 1907 से 1909 तक ग़ज़ल के दो-चार शेर छोड़कर उन्होंने कुछ नहीं लिखा। यह बात तो समझ में आती है क्योंकि नये वकील को प्रत्येक क्षण अपने पेशे को जमाने के लिए लगाना पड़ता है। सन् 1910 से 1912 तक उनकी रचना शक्ति में फिर उभार आया किंतु इस समय उन्होंने अपने नये रचना-क्षेत्र यानी ग़ज़ल ही में ज्यादा काम किया। नज़्म से ग़ज़ल की तरफ़ उनके झुकाव का हमें एक ही कारण दिखाई देता है

कि वे अपने पेशे में ज्यादा जमने के लिए लोकप्रिय होना चाहते थे और यही कारण है कि हर मुशायरे में जाते थे। सन् 1912 तक उनकी वकालत काफी जम चुकी थी। इसके बाद हम देखते हैं कि उनकी रचनाओं में गजलों की बजाए राजनीतिक कविताएँ अधिक आयी हालांकि—जैसा कि हम बाद में विस्तृत रूप से देखेंगे—उस समय तक उनकी गजलों में ऐसी चुम्बकीय किस्म की वैयक्तिकता आ गयी थी कि अगर वे काव्यक्षेत्र ही में जमना चाहते तो गजलों पर अधिक ध्यान देते। लेकिन उन्होंने गजल विधा की उपेक्षा-सी कर दी और सिर्फ मुशायरों के लिए गजलें लिखने लगे और अपने राजनीतिक-सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए बाद में वे विषयगत नज्में भी लिखने लगे थे।

कुछ आलोचकों की इस बात से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि चूंकि उन्हें एक बड़े परिवार के भरण-पोषण के लिए शायद ज्यादा-से-ज्यादा रुपये कमाना था इसलिए वे कम लिख सके। शायद इस किस्म की राय का आधार वे पंक्तियां हैं जो उन्होंने 'जमाना' पत्रिका के सम्पादक मुंशी दया नारायण निगम को लिखे गये एक पत्र में लिखी थी। उन्होंने 'जमाना' में न लिख पाने की यह कहकर माफी मांगी थी कि पेशे के काम में फँसे होने की वजह से लिख नहीं सकता। लेकिन हमें देखना है कि यह बात सच है भी या नहीं। पहली बात तो यह है कि उनके बड़े भाई म्युनिसिपैलिटी के कार्यकारी अधिकारी (एक्जीक्यूटिव अफसर) थे और संयुक्त परिवार का पालन-पोषण करने में समर्थ थे चाहे रहन-सहन कुछ नीचे स्तर ही का होता। दूसरी बात यह है कि जिस आदमी को सिर्फ कमाने की फिक्र होती है वह अपने पेशे के अलावा और किसी बात पर ध्यान नहीं देता। ऐसे बहुत से वकील होते हैं जो अदालतों, कानूनी रिपोर्टों और कानून की व्याख्याओं के अलावा और किसी तरफ ध्यान नहीं देते। चकबस्त ने ऐसा नहीं किया। वे अपने समय की राजनीतिक कार्रवाइयों में सर के बल कूद पड़े। और लगभग सन् 1918 तक उसमें लगे रहे (इसके बाद उन्होंने राजनीति में लगभग सन्यास ले लिया था क्योंकि अब राजनीतिक घटनाएं उनके मन के प्रतिकूल हो रही थी)। लेकिन इसके बाद उन्होंने अपना ध्यान पत्रकारिता में लगाया ताकि अपने विचारों का प्रचार कर सकें। इसके अलावा सारी उम्र वे समाज-सुधार के कामों में लगे रहे, खास तौर पर कश्मीरी-ब्राह्मण-समाज के सुधार में। इन बातों से मालूम होता है कि चकबस्त कमाई के पीछे पागल नहीं हुए।

यह स्पष्ट बात है कि चकबस्त के गुरु और पथप्रदर्शक प्रमुख वकील और राजनीतिक अग्रणी थे जैसे कि बिशुन नारायण दर, गंगा प्रसाद वर्मा, इकबाल नारायण मसलदान आदि। उनके आदर्श व्यक्ति थे महादेव गोविन्द

रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले और एनी बेसेंट। वे बाल गंगाधर तिलक और मोहनदास करमचंद गांधी जैसे व्यक्तियों के प्रशंसक थे। उन्होंने उपर्युक्त सभी व्यक्तियों की प्रशंसा गद्य और पद्य में की है। साथ ही, हम यह देखते हैं कि उन्होंने अपने समकालीन साहित्यकारों की प्रशंसा नहीं की। जिन साहित्यकारों की उन्होंने खुल के प्रशंसा की—जैसे 'नसीम' या 'सरशार'—वे उनके पूर्ववर्ती थे। यह ठीक है कि उन्होंने 'गुलदस्त-ए-अवधपंच' में समकालीन साहित्यिकों का ज़िक्र किया है लेकिन उसमें उनका रवैया प्रशंसात्मक होने की बजाए पीठ थपथपाने जैसा है।

स्पष्ट है, अपने गुरुओं और पथप्रदर्शकों की तरह चकबस्त भी संस्कृति और साहित्य को जीवन में ऊँचा स्थान देते थे लेकिन सर्वोच्च स्थान नहीं देते थे। उनका सर्वप्रथम उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक प्रगति था और वे अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का प्रयोग अगर पूरी तरह नहीं तो निश्चित ही मुख्य रूप से इस उद्देश्य के लिए करते थे।

उदारमत राष्ट्रवादी

चकबस्त नरमदल के पक्के राष्ट्रवादी थे। वे अपने विश्वासों में दृढ़ थे और खुलकर उनका प्रसार करते थे। लेकिन वे किसी तरह कठमुल्ला नहीं कहे जा सकते। जिन लोगों से उनका मतभेद था उनके गुणों की वे खुलकर प्रशंसा करते थे। दूसरी तरफ वे उन लोगों की भी, जिनकी किसी समय वे भूरि-भूरि प्रशंसा कर चुके थे, ऐसे कामों पर भर्त्सना भी करते थे जो उन्हें नापसंद थे। उनकी श्रीमती एनी बेसेंट की प्रशंसा में लिखी हुई नज़्में भक्ति की सीमा छूने लगती हैं लेकिन जब श्रीमती बेसेंट ने सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी की आलोचना की तो चकबस्त ने भी उन्हें खूब सुनायी। वे महात्मा गांधी के सदैव प्रशंसक रहे लेकिन उन्होंने गांधी जी के असहयोग और खिलाफत आंदोलनों का खुलकर विरोध किया और जून 1920 के सुबहे-उम्मीद में लिखा, "हम गांधी की शख्सियत की दिल से कद्र करते हैं लेकिन हमें अफ़सोस है कि हम उनके तर्ज़-अमल पर साद (समर्थन) करने को तैयार नहीं है।" तिलक गरम दल के नेता थे और उनकी अतिवादी नीति को चकबस्त ने कभी पसंद नहीं किया किंतु जब 1920 में तिलक की मृत्यु हुई तो चकबस्त ने न केवल उनके लिए मरसिया लिखा बल्कि अपनी पत्रिका के जुलाई 1920 के अंक में लिखा: "हमें मिस्टर तिलक के असली पोलिटिकल मसलक पर क़दम-ब-क़दम चलने का दावा नहीं रहा लेकिन उनकी ज़िंदगी के मरदाना जौहरों से कौमी ज़िंदगी की ज़ीनत थी।"

चकबस्त ने प्रथम महायुद्ध के दौरान युद्ध प्रयत्नों का समर्थन किया था

जैसा उस समय के सभी राष्ट्रवादियो ने किया था। लेकिन उन्हें युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार के रवैये से निराशा हुई। इस काल मे वे श्रीमती एनी बेसेंट और उनके होम रूल आंदोलन के पूर्ण समर्थक थे और उनकी नजरबंदी पर उन्होने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। लेकिन वे किसी प्रकार के जन आदोलन या असहयोग की बात भी नही सोच सकते थे। उन्हे कांग्रेस में फूट पड़ने का दुख था किंतु वे उसकी जिम्मेदारी गरम दल पर डालते थे और बहुमत की मान्यता के सिद्धात की उपेक्षा करके भी उन्होने लिबरल फेडरेशन की स्थापना का समर्थन किया। पजाब के 1919 के अत्याचारो पर उन्होंने क्षोभ व्यक्त किया लेकिन उन्होने समर्थन उसी ढग के विरोध प्रदर्शन को दिया जो लिबरल फेडरेशन ने किया था। उन्होने सुबहे-उम्मीद के जनवरी-फरवरी 1920 के अक मे लिखा :

"पजाब के मजलूमो'[1] की दादरसी[2] के बाबत जो तजवीज माडरेट कान्फ्रेंस ने मजूर की है वह निहायत जामिअ[3] और पुरजोर है और हाकिमाने वक्त को ख्वाबे-खरगोश से जगाने के लिए आवाजए-नफ़ीर[4] है। क्या अच्छा होता अगर काग्रेस के प्लेटफार्म से भी इसी शान की तजवीज मजूर की जाती।"

अगर चकबस्त ने जलियांवाला बाग के भयानक कांड पर कोई दिल हिलानेवाली कविता नही लिखी तो इस बात को राजनीतिक समस्याओं को लेकर हानेवाले उनके अतर्द्वन्द्व की पृष्ठभूमि मे देखना चाहिए। वैसे उन्होंने अपनी पत्रिका मे कई बार लिखा कि जनरल डायर की बर्खास्तगी भर से न्याय की आवश्यकता पूरी नही होती।

चकबस्त अपने काल की सामाजिक जागृति का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते थे। स्त्रियों को समानाधिकार देने के मामले मे शायद वे अपने जमाने से दो एक दशक आगे बढ गये थे। वे न केवल स्त्री-शिक्षा के और परदा प्रथा के अत के समर्थक थे अपितु वे स्त्रियों की सामाजिक स्वतत्रता के पक्षपाती भी थे। उन्होंने हिन्दुओं मे विधवाओं के विवाह का समर्थन किया, यह पहले ही बताया जा चुका है। अपनी पत्रिका के प्रथम (अक्तूबर 1918) अंक ही मे उन्होंने श्री पटेल द्वारा पेश किये गये अंतर्जातीय विवाहों को मान्यता दिलानेवाले विधेयक का पूर्ण समर्थन किया और लिखा : "इस मसविदे की मुखालिफत करना सैकड़ों बरसों के जुल्म को रवा रखना है।" इस बारे में उन्होंने आगे लिखा :

"फर्ज़े-मुहाल अगर यह तसलीम भी कर लिया जाये कि अजदवाजे-मुख्तलता[5] वाक़ई तौर पर हिंदू धर्म शास्त्र के खिलाफ है

1. पीड़ितों, 2. न्याय, 3. व्यापक, 4. शिकार स्वर, 5. मिश्रित विवाह।

तो ऐसी हालत मे इखलाकी और सोशल आजादी का कानून जो कुदरत के फरिश्ते ने हर इसान की पेशानी की लौह[1] पर तहरीर कर दिया वह धर्म शास्त्र मे कम काबिले-वकअत नही है।"

चकबस्त किसी भी प्रकार के समाजवादी नही थे लेकिन आर्थिक समस्याओं पर उनके विचार बहुत खुले थे। उनकी सहानुभूति हमेशा निर्धन लोगो के लिए होती थी। 'सुबहे-उम्मीद' के मार्च 1921 के अक मे उन्होने केन्द्रीय बजट पर टिप्पणी की और सैनिक व्यय मे बढोतरी का विरोध किया। इसके साथ ही उन्होने रेलवे के किरायो मे वृद्धि और चीनी का आयात कर बढाने का विरोध किया क्योंकि इनसे आम आदमी को कठिनाई होने की सभावना थी। लेकिन उन्होने यह भी लिखा

"बेशक इनकम टैक्स मे इजाफा करना, विलायती शराब, तम्बाकू, मोटरकार, घडी और बाजो वगैरा पर महसूल का इजाफा करना गरीब अवामुन्नास[2] को न खलेगा। ऐसे इजाफे का बार दौलतमन्द तबके के जिम्मे रहेगा जिसकी ऐशपरस्ती मे जरूर थोडा-सा खलल वाकई होगा।"

चकबस्त अर्थशास्त्री नही थे और उनकी राय को बचकाना कहा जा सकता है, लेकिन इससे यह तो मालूम ही होता है कि उन्हे आम आदमी का कितना खयाल था।

यह जानना भी हमारे लिए रुचिकर होगा कि धन दौलत के बारे मे चकबस्त के क्या विचार थे। उनकी सामाजिक कविताओ मे स्पष्ट रूप मे यह विचार उभर कर आते है। वे धन को आवश्यक मानते थे लेकिन उनके विचार से धन कमाना स्वय ही मे कोई उद्देश्य नही होना चाहिए और दौलत इसलिए भी नही कमानी चाहिए कि उसका दिखावा किया जाये। उनकी नज्म 'मुरक्क-ए-इबरत' के कुछ शेरो मे यह विचार प्रकट होते है। इस दृष्टिकोण को कि धन एक बुराई है भर्त्सना करने के बाद वे कहते है

दौलत से है अब औजे-बालाखानए-तहजीब[3]
कहते है इसे शम्ए-शबिस्तानए-तहजीब[4]

जर आप नही हुस्ने-इखलाको-अदब है
जो हद से गुजर जाती है वह इसको तलब है

जो लोग धनदौलत को एकमात्र लक्ष्य मानते है उनके बारे मे कहते है :

महरूम मए-ऐश से दर खुश्कजिगर है
गालिब ये नही जर के तलबगारे-जर है

---

1. ललाट, 2. जन साधारण 3. सभ्यता के महल की ऊँचाई, 4. सभ्यता के पूजा घर के प्रकाशित करने वाली शमा।

और आगे कहते हैं :

> दौलत वो है मजबूर को जो उक़दाकुशा[1] हो
> अक्सीर हो दर्दे-दिले-बेकस की दवा हो

एक अन्य कविता 'दर्दे-दिल' में वे दिखावा करनेवालों की भर्त्सना इस तरह करते हैं :

> जान से शौक़े-नुमायश में गुज़र जाएं अभी
> क़ब्र चांदी की जो मिल जाए तो मर जाएं अभी

धर्म सम्बन्धी विचार

धर्म के सम्बन्ध में चकबस्त के रवैये को समझना ज़रूरी है। यद्यपि आम तौर पर उन्हें राष्ट्रवादी और साम्प्रदायिकता विरोधी कवि समझा जाता है फिर भी कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें संदेह है कि चकबस्त के दृष्टिकोण में साम्प्रदायिकता का पुट है। निस्संदेह, इन लोगों के विचार गलत आधारों पर कायम हुए हैं फिर भी यह बताना ज़रूरी है कि यह संदेह क्यों गलत है।

चकबस्त के अपने गद्यलेखन में उनके धर्म सम्बन्धी सामान्य विचार या निजी धार्मिक विश्वास स्पष्ट नहीं हुए किन्तु उनके काव्य में आये कुछ संदर्भों—विशेषतः उनकी ईश्वर विषयपरक कविताओं—में इस सम्बन्ध में उनके विचारों के संकेत मिलते हैं। इन तत्त्वों को सामने लाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

यह तो निश्चित है कि चकबस्त अनीश्वरवादी नहीं थे। इसके बावजूद वे धर्म के दिखावटी पक्ष के घोर विरोधी थे जैसा निम्नलिखित शेरों से स्पष्ट होता है :

> दिल सूरते-आईना जो रौशन नहीं होता
> जुन्नार[2] पहनने से बरहमन नहीं होता

> जिनके एमाल[3] में मज़हब की लताफ़त नहीं खाक
> उनके क़दमों से न यह पाक हवन हो नापाक

> हक़-परस्ती की जो मैंने बुतपरस्ती छोड़कर
> बरहमन कहने लगे इलहाद[4] का बानी[5] मुझे

: उनके विचार से धर्म की मौलिक विशेषताएँ मानव सेवा और मानव स्वतन्त्रता का रक्षण हैं :

---

1. निर्धनों की गाँठ खोलनेवाली (कठिनाई दूर करनेवाली) 2. यज्ञोपवीत, 3. कार्यों, 4 अधर्म, 5. प्रवर्तक,

हमारे और ज़ाहिदों के मज़हब में फ़र्क़ अगर है तो इस क़दर है
कहेंगे हम जिसको पासे-इंसां वो उसको ख़ौफ़े-ख़ुदा कहेंगे

आश्ना हो कान क्या इंसान की फ़रियाद से
शेख़ को फ़ुरसत नहीं मिलती ख़ुदा की याद से

चकबस्त धार्मिक विवादों को भी बेकार समझते थे :

वाजिब नहीं मजहब के मसाइल[1] मे जो हुज्जत
बाज़ीचए-अतफ़ाल[2] हैं हफ़्तादो-दो[3] मिल्लत

लेकिन चकबस्त का विश्वास वैदिक सर्ववदना (पैनथीइज्म) पर था। इसी धार्मिक प्रवृत्ति ने आगे चलकर वेदान्त और सूफ़ीवाद का रूप ले लिया।

ऐन कसरत[4] मे ये वहदत[5] का सबक़ बेद मे है
एक ही नूर है जो ज़र्रओ-ख़ुरशेद[7] मे है

यह ठीक है कि चकबस्त ने गाय, कृष्ण और रामायण जैसे हिंदू धार्मिक विषयों पर कविताएँ लिखीं और इस्लामी धार्मिक विषयों पर कुछ नहीं लिखा लेकिन इससे यह साबित नहीं किया जा सकता कि उनमें लेशमात्र भी साम्प्रदायिकता थी। उनकी पुत्री का कहना है कि उनके हिंदू मित्रों से अधिक मुस्लिम मित्र थे। उस समय के किसी मुसलमान ने नहीं सोचा कि चकबस्त की उपर्युक्त नज़्मों मे कोई साम्प्रदायिक भावना है। आजकल के आलोचकों मे, जिन्हें हर जगह भूत दिखाई देते हैं, उस समय के लोग अधिक सुलझे विचारों के थे। वे जानते थे कि अपने धर्म की कुछ बातों के प्रकाशन मे कोई साम्प्रदायिकता नहीं होती। 'हाली' ने 'मद्दो-जज़्रे-इस्लाम' लिखा, 90—95 फ़ी-सदी मुस्लिम कवि नअत (हज़रत मुहम्मद की प्रशंसा की कविताएँ) लिखते हैं और लगभग सारे शिया कवि कर्बला प्रकरण के बारे में कुछ-न-कुछ लिखते हैं। क्या इससे यह सिद्ध होता है कि यह सभी कवि साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के हैं?

साम्प्रदायिक मनोवृत्ति तभी ज़ाहिर होती है जब कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यह कहे कि उसमें धर्म या सम्प्रदाय की कुछ बातें दूसरे के धर्म या सम्प्रदाय की बातों से अच्छी है। चकबस्त ने कभी ऐसा नहीं किया। उनका एक भी शेर ऐसा पेश नहीं किया जा सकता जिसमें किसी अन्य धर्म या सम्प्रदाय के विरोध या उसके परिहास की झलक भी मिले। दूसरी ओर 'अकबर' इलाहाबादी की तरह वे भी चाहते थे कि हिंदू-मुसलमान दोनों अपने विश्वासों पर दृढ़ रहें और ऐसा नहीं होता तो वे उनका मज़ाक उड़ाते हैं।

---

1. प्रश्नों, 2. बच्चों के खेल, 3. बहत्तर (मुसलमानों के बहत्तर फ़िरक़े बताये जाते हैं),— 4. बहुत्व, 5 एकत्व, 6. कण और सूर्य।

> निफ़ाक़[1] गब्रो-मुसलमाँ[2] का यूँ मिटा आख़िर
> ये बुत को भूल गए वह ख़ुदा को भूल गए।
>
> क़ौम को शीराबन्दी[3] का मिला बेकार
> रंगे-हिंदू देख कर तर्ज़-मुसलमाँ देख।

नासिख़-नसीम विवाद

चकबस्त ने मसनवी 'गुलज़ारे-नसीम' के अपने संस्करण की भूमिका में जो कहानी उद्‌गम बताए बग़ैर दी है उसके आधार पर कुछ लोगों को संदेह है कि उसमें साम्प्रदायिकता का पुट है। चकबस्त ने लिखा है कि महाकवि 'नासिख़' ने (जो 'नसीम' के उस्ताद 'आतिश' के प्रतिद्वन्द्वी थे) एक मुशायरे में 'नसीम' से कहा कि मैंने एक मिसरा कहा है लेकिन उस पर दूसरा मिसरा नहीं लग रहा। यह मिसरा था, "शेख़ ने मसजिद बना मिसमार बुतख़ाना किया।" 'नसीम' ने फ़ौरन उस पर दूसरा मिसरा लगाया : "तब तो इक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया।" इस पर बुज़ुर्ग 'नासिख़' समेत सभी लोगों ने 'नसीम' की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इसमें संदेह नहीं कि दूसरा मिसरा जो उर्दू काव्य परम्परा को पूरी तरह निभाता है पहले मिसरे को—जिसमें एक रूखी-सूखी बात कही गई है—अत्यंत मनोरम काव्य रूप दे देता है।

चकबस्त ने लिखा है कि 'नासिख़' ने मज़हबी चोट की थी लेकिन 'नसीम' ने उसे वहीं ठंडा कर दिया।

अपनी पुस्तक 'नासिख़' में डा. शबीहुल हसन ने लिखा है कि ऐसी कोई घटना हुई ही नहीं। वे कहते हैं कि 'नासिख़' को 'नसीम' जैसे नौजवान की सहायता की ज़रूरत ही नहीं हो सकती। इसके अलावा यह शेर बहुत पहले मीर अला अली ने इस तरह कहा था :

> तोड़ बुत ज़ाहिद ने क्यों मसजिद ये बुतख़ाना किया
> तब तो इक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया

डा. शबीहुल हसन के अनुसार यह घटना चकबस्त की गढ़ी हुई है। चकबस्त का कहना है कि यह घटना उन्होंने अपने बुज़ुर्गों की ज़बानी सुनी। अच्छा होता अगर वे उन बुज़ुर्ग का नाम भी बता देते जिन्होंने उन्हें यह बात बतायी थी। शायद नौजवानी के जोश में चकबस्त ने संदर्भ पर ध्यान देना ज़रूरी नहीं समझा, किन्तु इसी बात से उन पर मनगढ़त बात करने का आरोप—

---

1. [illegible] 2. हिंदू तथा मुसलमान, 3. एकता।

लगाना ठीक नही है। बूढे लोग कभी-कभी पुरानी घटनाओं के टुकड़े जोड़ने मे भूल कर जाते है क्योंकि बुढापे मे स्मरण-शक्ति भी क्षीण हो जाती है। हो सकता है कि चकबस्त को कोई गलत जोड-तोडवाली घटना बतायी गयी हो। फिर यह घटना हो भी सकती है। बुजुर्ग लोग कभी-कभी नौजवानों को छेडने के लिए उनके सामने टेढे सीधे सवाल रख भी देते है, इसमे उनका उद्देश्य दुश्मनी का नही होता केवल तात्कालिक रूप से परेशान करने का होता है। इसमे संदेह नही कि चकबस्त ने जो यह नतीजा निकाला कि 'नासिख' ने मजहबी चोट की थी वह गलत ही नही गैरजिम्मेदाराना भी है। लेकिन इससे यह साबित नही होता कि चकबस्त की भावना साम्प्रदायिक थी।

यह भी सही है कि चकबस्त ने हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना का समर्थन किया लेकिन इससे भी उनकी साम्प्रदायिक प्रवृत्ति सिद्ध नही होती। चकबस्त हर जगह शिक्षा के समर्थक थे और जहां भी उन्होंने सर सैयद अहमद खां (वर्तमान अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्थापक) का उल्लेख किया है वहां प्रशंसा के साथ किया है। उन्होंने खिलाफत आंदोलन का विरोध किया लेकिन उन्होंने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों मे यह भी स्पष्ट कर दिया कि उन्हें तुर्कों की मांग से पूरी सहानुभूति है और वे केवल कानून तोड़ने और सरकार के साथ असहयोग के विरोधी है।

पूरे आत्मविश्वास के साथ कहा जा सकता है कि चकबस्त से अधिक साम्प्रदायिकता विरोधी कोई साहित्यकार या पत्रकार हुआ ही नही।

चकबस्त का संस्कृति और कला के प्रति रवैया दो कारणों से उनके धार्मिक विचारों से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। पहला यह कि वे कला और संस्कृति में सिर से पांव तक डूबे थे और हर बात अधिकारपूर्वक कहते थे और दूसरा यह कि जो कुछ उन्होंने कहा वह न सिर्फ उनके ज़माने में ठीक था बल्कि आज की परिस्थितियों में भी लागू होता है। दूसरे नम्बर का कारण शायद यह है कि चकबस्त को विचारक की हैसियत से मान्यता नहीं दी गई इसलिए उनकी कही हुई बातों की उपेक्षा कर दी गई। अधिकतर आलोचकों की दृष्टि में चकबस्त सच्चे दिल से देशभक्ति की बातें लिख कर कविता किया करते थे, इससे अधिक कुछ नहीं थे। इसमें संदेह नहीं, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, कि चकबस्त से बड़ा देशप्रेमी कवि और कोई नहीं हुआ। लेकिन उनके विश्वासों और विचार-पद्धति में कई और ऐसी बातें हैं जिन पर ध्यान देना जरूरी है। हम अपनी चर्चा कला और संस्कृति के विषय में उनके विचारों से उनकी विचार-पद्धति से आरम्भ करते हैं।

पुरातन और नवीन

[illegible] ऐसे समय में [illegible] आरम्भ किया जब ब्रिटिश राजनीतिक आधिपत्य के फलस्वरूप ब्रिटिश सांस्कृतिक आधिपत्य भी कायम होने लगा था। इस तथ्य को अंग्रेजों की जान बूझकर की गयी कार्रवाई समझना ठीक न होगा। इस बात के दो कारण थे। पहला यह है कि परम्परागत ज्ञान और संस्कृति के पूरे जानकार लोग सार्वजनिक जीवन में बहुत पिछड़ गये थे। दूसरा यह कि जनसाधारण स्वभावतः ही शासकों की संस्कृति से प्रभावित था और अपनी परम्पराओं से जो उसके सामने केवल रूढ़ियों के रूप में आती थीं, निराश थे। इसके फलस्वरूप तीव्र सामाजिक सुधार के आंदोलन हुए—खास तौर पर मुसलमानों में—जिनका उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश संस्कृति की वे सभी बातें अपना ली जाएँ जिनमें खुले रूप से धार्मिक आदेशों का उल्लंघन न होता हो। उत्तरी भारत में यह आंदोलन अधिकतर ऐसे लोगों ने शुरू किये जो अच्छी तरह अंग्रेज़ी नहीं जानते थे और इसीलिए तीक्ष्ण बुद्धि और संतुलित विचार रखने के बावजूद ब्रिटिश संस्कृति को सच्चे अर्थों में अपनाने में समर्थ नहीं हुए। सर सैयद अहमद खां द्वारा किए हुए समाज-सुधार और उनके सच्चे समर्थकों 'हाली' और मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' द्वारा चलाये गये साहित्य सुधार के आंदोलनों की असली कमज़ोरी यही थी।

इस मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया तरह-तरह से हुई। हम अपने विचार-विमर्श को उर्दू साहित्य के क्षेत्र में होनेवाली प्रतिक्रियाओं तक सीमित रखेंगे। इस काल में तीन महाकवि उभरे—'अकबर' इलाहाबादी, चकबस्त और 'इकबाल'। इन तीनों की काव्य सर्जना का उद्देश्य अपने समाज सम्बन्धी विचारों का प्रसार था। इन तीनों ही ने पश्चिमी संस्कृति की अंधाधुंध प्रशंसा की प्रवृत्ति के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। 'अकबर' इलाहाबादी ने हास्य का सहारा लेकर पुरातनवादी विचारों को कायम रखना चाहा। अततः 'अकबर' का उद्देश्य तो असफल रहा किन्तु उनके हास्य ने उर्दू साहित्य में बड़ी अभिवृद्धि कर दी। 'इकबाल' ने एक ऐसा दर्शन सामने रखा जो 'शुद्ध' इस्लामी सिद्धांतों के आधार पर एक भविष्य का संसार बनाना चाहता था। चकबस्त ने नवीन विचारों और पुरानी परम्पराओं का पूर्ण समन्वय करके अपने समाज सम्बन्धी कार्यों और विचारों की स्थापना की। दरअसल प्रस्तुत लेखक यह तय करने में असमर्थ है कि इन तीनों में से किसको बाकी दो से बड़ा कहा जाये। तीनों ही पूरे तौर पर अपने असमर्थ हैं विश्वासों के प्रति ईमानदार थे और अत्यंत प्रतिभाशाली भी। इसलिए मैं तीनों को बराबरी का दरजा देता हूँ।

सामाजिक सचेतना के इन तीन महान पथप्रदर्शकों में से चकबस्त पर लोगों का सबसे कम ध्यान गया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

'अकबर' और 'इकबाल' दोनो ने अपनी सामाजिक मान्यताओं के प्रसार का माध्यम मुख्यत: कविता को रखा। इसका सीधा-सा कारण यह था कि उनके विचारो को जीवन मे लागू नही किया जा सकता था और साथ ही इन दोनो मे से कोई भी अपने वास्तविक जीवन को पश्चिमी संस्कृति से—जिसके दोनो विरोधी थे—अलग नही कर सका था। इसीलिए दोनो ने काव्य सर्जना पर पूरा ध्यान लगाया और बहुत कुछ लिखा। चकबस्त ने अपने सामाजिक और राजनीतिक कार्यों को पुष्ट करने के लिए ही काव्य सर्जना की। इसलिए उन्होंने अपेक्षतया कम कविताएँ लिखी। दूसरी बात यह है कि 'अकबर' और 'इकबाल' ने जो कुछ कहा वह अपनी प्रकृति ही से आकर्षण पैदा करता था। 'अकबर' ने हास्य का सहारा लिया और 'इकबाल' ने कल्पना की उडान का। चकबस्त ने कविता मे वही कहा जो उस समय के विचारशील लोग सोचते थे। लोग उनकी बातो मे इतने सहमत थे कि उन्हें याद रखने की जरूरत ही नही समझते थे।

इसके बावजूद चकबस्त के बहुत से शेर लोगो की स्मृति मे जम गये। इस बात का श्रेय उनकी कलात्मक श्रेष्ठता और कविता मे उनकी हार्दिक भावना के प्रदर्शन को मिलना चाहिए। इस बात पर हम बाद मे विचार करेंगे। अभी हम चकबस्त के समाज और कला सम्बन्धी विचारो का विश्लेषण करेंगे क्योंकि समय गुजरने के साथ ऐसा करना जरूरी हो गया है।

शिक्षा सम्बन्धी विचार

चकबस्त पूरे तौर पर अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा-पद्धति के प्रसार के पक्षपाती थे। उन्होंने प. मदन मोहन मालवीय द्वारा हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का समर्थन किया और वे सर सैयद अहमद खा का भी सम्मान इसलिए करते थे कि उन्होंने मुसलमानो को आधुनिक शिक्षा दिलाने का प्रयास किया था। वे असहयोग आदोलन के उस पक्ष के घोर विरोधी थे जो विद्यार्थियों को स्कूलो और कालेजों को छोडने की प्रेरणा देता था। उन्होंने प. मदन मालवीय के उस सतुलित निर्णय की सराहना की जिसके अनु- विश्वविद्यालय के छात्रो को शिक्षा नही छोडने दी थी। जनवरी 1921 के अक मे लिखा :

रफिकत[1] के पोलिटिकल मसले को

ढ के तालिबइल्मो की तबीयत को

हमने दो हफ़्ते के लिए बज़्र पर अंगेख़्ता[1] कर दिया था···मगर अलीगढ़ कालेज में भी यह जादू ज़ियादा देर तक न चल सका···आख़िर में नतीजा यह हुआ कि कमीर[2] तादाद तालिबइल्मों का दुआए-शौक पढ़कर कालेज में शरीक हो गया ··हिंदू यूनीवर्सिटी पर कई हमले हुए मगर पंडित मदन मोहन मालवी की मरदाना दूर अंदेशी ने तालिबइल्मों के पोलिटिकल हवास बिगड़ने न दिए और हमारा ख़याल यह है कि इस सूबे के तालिबइल्मों की आगे खुल गयी और अदमरिफ़ाक़त का इब्तदाई जोश उनके ख़ून में तरक़्क़ी न कर सका।"

अपनी कविताओं में, ख़ास तौर पर उनमें जो कश्मीरी पंडितों के सम्मेलनों लिए लिखी गई है, उन्होंने अक्सर आधुनिक ढंग की शिक्षा प्राप्त करने और के द्वारा अपनी जाति और देश की सेवा करने पर जोर दिया गया है। होंने लखनऊ में गंगा प्रसाद लाइब्रेरी के उद्‌घाटन के मौके पर एक कविता खी जिसका यह बंद उनके उत्कट शिक्षा प्रेम को व्यक्त करता है :

> दौलते-इल्म लुटेगी इसी दर से दिन रात
> हमने सोचो है यही नाम पे उसके सौग़ात
> देर से आएं बरहमन कि हरम से ज़ाहिद[3]
> सब यहीं पाएंगे सरमायए-तस्कीने-हयात[4]

चकबस्त विधवा-विवाह और स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक समानता समाजसुधारों का बीड़ा उठाए थे। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि यह ाज सुधार पश्चिमी संस्कृति के फलस्वरूप आरंभ हुए थे और कोई भी व्यक्ति इन सुधारों का पक्षधर हो, पुनरुत्थानवादी नहीं हो सकता। किंतु उन्होंने चमी संस्कृति का अंधाधुंध अनुकरण करने की प्रवृत्ति का डट कर विरोध या। वे चाहते थे कि भारतीय लोग अपने देश की संस्कृति के शक्तिशाली र मनोरम तत्वों पर गर्व करें।

नवम्बर 1918 की 'सुबहे-उम्मीद' में उन्होंने ('उर्दू शायरी' के शीर्षक लिखा :

"हमारे अज़ीज़ाने-वतन ने जब ग़ैरक़ौम की इताअत क़बूल की तो उन्हें भी दो किस्म की ज़ंजीरें पहननी पड़ी। फ़रमांरवाओं के क़ानून के परदे में जो पाबंदियाँ उन्हें बरदाश्त करनी पड़ी उन्हें लोहे की ज़ंजीरें समझना चाहिए···मगर इन ज़ाहिरी पाबंदियों से बहुत ज़ियादा क़ाबिले-इबरत ख़यालात की ग़ुलामी थी जिसने ग़ैरक़ौम की हुकूमत का सिक्का हमारे दिलो-दिमाग़ पर जारी कर दिया। हमारे जज़बातो-ख़यालात मग़रिबी

उत्तेजित, 2. बड़ा, 3. धैर्य लोग, 4. जीवन को तुष्ट करने वाला धन।

तहज़ीब के मसनूई और नुमाइशी रंग मे गिरफ़्तार हो गये और हम अपने कौमी हिफ़्ज़-मरातिब से बेखबर हो गए। मै इस खयालात की गुलामी के सिलसिले को सोने की जजीर कहूँगा जिसे हमने खुशी से पहन लिया और अपनी गिरफ्तारी पर नाज करने लगे।"

शिक्षा के जोशीले समर्थक होने के बावजूद उन्होने इसी निबंध मे आगे लिखा

"अंगरेज़ी तालीम ने मुल्क मे रफ्ता-रफ्ता जो बेदारी पैदा की है उसे भूल जाना कौमी अहसानफरामोशी है मगर इस तालीम का एक सरीही असर हमारे कौमी इखलाक पर बहुत खराब पडा। वह यह था कि तालीम महज़ ज़रिय-ए-मुआश हो गई।"

मुझे ताज्जुब है कि पश्चिमी शिक्षा पद्धति का यह मूल्यांकन उस समय के शिक्षित वर्ग के दिमाग मे क्यो नही बैठा। इससे भी अधिक आश्चर्य इस बात का है कि आज के अधिकतर शिक्षाशास्त्री भी शिक्षा और रोजगार के सबंध को कमज़ोर करने की जरूरत नही समझते और परोक्ष रूप से इस सार्वजनिक प्रवृत्ति की पुष्टि करते है कि ऊँची शिक्षा का फल अधिक आय होना चाहिए। वे यह समझ ही नही पाते कि उच्च शिक्षा का उद्देश्य आत्मतुष्टि होना चाहिए, अधिक लाभ उठाना नही।

चकबस्त और 'हाली'

इस सिलसिले मे चकबस्त ने जो कटु आलोचनाएँ और तेज हमले किये है उनके सबसे अधिक शिकार शायद मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' हुए। चकबस्त ने 'गुलज़ारे-नसीम' का जो सस्करण निकाला, उसकी भूमिका मे लिखा :

"मौलाना हाली मग़रिबी शायरी की पैरवी की फिक्र मे अगरेज़ी नज़्मो के तरजुमे पढते है और चूँकि गैरज़बान मे तरजुमे होने से उन नज़्मो की नाजुकखयाली और बलदपरवाज़ी के जौहर तशरीफ ले जाते है और इस्तेआरो और तश्बीहो की पेचीदगियाँ कायम नही रहती लिहाज़ा यह खयाल करते है कि मग़रिबी शायरी का उसूल यह है कि इबारते-सादा नज़्म कर दी जाये और इस खयाल के मुआफिक उर्दू के जिन अशआर मे आप नाजुकखयाली और बारीकबीनी की वजह से किसी तरह की पेचीदगी पाते है उनको बेमानी और मुहमिल क़रार देते है।"

यह ध्यान रखना चाहिए कि अपनी रचना 'मुक़द्दमा-ए-शेरोशायरी' मे 'हाली' ने मसनवी 'गुलज़ारे-नसीम' पर बहुत-सी आपत्तियाँ की थी। चकबस्त नौजवानी के जोश मे 'हाली' पर बेतहाशा हमले किये। उन्हे इस बारेमे

में हमेशा नाज़ां रहेगी। मौलाना मरहूम हाली पहले शख्स थे जिन्होंने यह आवाज़ बुलन्द की कि ज़माने के साथ उर्दू शायरी को भी नया लिबास बदलना चाहिए और यह मामूली बात न थी। मगर अपने अंगरेज़ीदाँ अहबाब की मदद से अंगरेज़ी शायरी का जो मेयार मौलाना मौसूफ ने कायम किया और जिसके सांचे में उर्दू शायरी को ढालना चाहा वह इस ऐब से खाली न था जिसका अभी ज़िक्र हो चुका है (यानी जज़बात को नज़रअंदाज़ करके सिर्फ़ ख़यालात पर तकिया करना)। इस ऐब का असर मौलाना के नए रंग के कलाम में कसरत से पाया जाता है।"

मौलाना 'हाली' के काव्य के बारे में चकबस्त की जो राय है, उससे मैं सहमत नहीं। उल्टे मेरा विचार है कि उर्दू संसार ने 'हाली' के साथ पूरा न्याय नहीं किया और उन्हें लगभग दूसरी श्रेणी का ग़ज़लगो मान लिया गया। सादगी में असर कायम रखना बहुत मुश्किल काम है और 'हाली' ने साबित कर दिया कि उनकी काव्य-चेतना बहुत सूक्ष्म थी क्योंकि उन्होंने उपर्युक्त काम पूरी तरह कर दिखाया। हाँ 'हाली' के उर्दू काव्य सम्बन्धी विचार ज़रूर एकांगीपन लिए हुए थे। चकबस्त के लेखनों से विस्तृत उद्धरण देने में मेरा उद्देश्य सिर्फ़ यह था कि कला और संस्कृति के सम्बन्ध में चकबस्त के जो विचार थे उन्हें उभार कर दिखाया जाए।

कविता के बारे में चकबस्त के कुछ और विचारों को जानना भी अच्छा रहेगा। उर्दू काव्य सम्बन्धी उपर्युक्त लेख में उन्होंने लिखा है

"कदीम उर्दू शुअरा के कलाम में बहुतेरे ऐसे खयालात मिलेंगे जिन्हें मौजूदा जमाने का मज़ाक कबूल नहीं कर सकता या जो मौजूदा मैयार के मुताबिक पायए-तहज़ीब से गिरे हुए हों। मगर खयालात की पस्ती में तंग आकर हमें उनके शायराना जौहर को न भूल जाना चाहिए।"

यह बात आश्चर्यजनक है कि कम उम्र ही में चकबस्त ने अपने विचार दृढ़तापूर्वक स्थापित कर लिये थे। उनके अंत समय तक इनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यह खयाल रखने पर भी उनकी मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी। इस प्रकार की अपरिवर्तनशीलता पर आश्चर्य होता है। शायद यह बात इस वजह से हो कि उन्हें बिशन नारायण दर और दूसरे विद्वान और विचारशील लोगों का पूर्ण पथ-प्रदर्शन मिला था। उपर्युक्त उद्धरण सन् 1918 में लिखे हुए एक लेख में दिया गया है। यही चिंताधारा उस लेख में दिखाई देती है जो उन्होंने महाकवि 'दाग' की मृत्यु पर लिखा था जो जुलाई 1905 की 'जमाना' पत्रिका में छपा था। वे लिखते हैं

"लेकिन इन (शायराना) जज़बात खयालात वगैरा की दो किस्में हैं, अदना और आला। आला जज़बातो-खयालात से बहैसियते-मजमूई पिनाहते इन्सानी का रूहानी हिस्सा मुराद लिया जाता है और अदना जज़बात से हैवानी हिस्सा।...वह जौहरे असली जो शायराना ज़बान की जान है दाग की ज़बान में मौजूद नहीं।"

अपने दुराग्रहों से संघर्ष

मुझे फिर चकबस्त से मतभेद प्रकट करना पड़ रहा है। कविता में अदना (छोटा) और आला (बड़ा) कुछ नहीं होता। कविता में सिर्फ 'गहरा' और 'छिछला' होता है और इस मामले में भी कोई बात निन्दनीय नहीं होती क्योंकि हर एक को अवसर के अनुसार ही दृष्टिकोण अपनाना होता है। क्या यह मुमकिन है कि युद्धक्षेत्र का वर्णन करते समय मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ सुलझाई जायें? लेकिन चकबस्त के साहित्यालोचना सम्बन्धी विचार उस ज़माने के लिहाज से बिल्कुल नये थे। ध्यान देने की बात यह है कि अपने विक्टोरिया-कालीन नैतिक मानदण्डों के बावजूद उन्हें कहीं भी कलात्मक सौन्दर्य देखने में दिक्कत नहीं हुई। हम इस बात को पहले ही उनके एक उद्धरण में देख चुके हैं।

चकबस्त की आलोचना प्रवृत्ति की एक विशेषता यह है कि वे जिस पर

अत्युक्तियाँ कम रहे होते हैं उनके गुणों को भी गुणों रूप में मानते हैं अर्थात् उनका प्रयास वस्तुनिष्ठ चित्रण देने का होता है। इसके नमूने हो का उद्धरण देता है जिसमें उन्होंने 'हाली' के दीवान को सराहा था। वे 'दाग़' की कविता पसंद न करते थे किन्तु उस महाकवि की मृत्यु पर उन्होंने अपने लेख में लिखा "...जो तीर उसकी ज़बान से निकलता है तासीर में डूबा हुआ निकलता है।"

ये मसनवी गुलज़ारे-नसीम के सबसे बड़े प्रशंसक थे। जबसे यह मसनवी लिखी गई है तबसे आज तक इसकी तुलना मीर हसन की महान मसनवी सिहरुल-बयान से की जाती रही है। चकबस्त ने भी दोनों की तुलना की है और बहुत न्यायपूर्वक की है। कश्मीर दर्पण के फरवरी 1904 के अंक में इसी 'नसीम' सम्बन्धी लेख में लिखते हैं : "अगर समाज की सादगी और बेतकल्लुफी का लुत्फ़ उठाना है तो मीर की मसनवी देखो। अगर बारीक-बीनी और मानिआफ़रीनी का ख़याल है तो गुलज़ारे-नसीम की सैर करो।" आगे लिखते हैं, "मगर इतना कहना नाइन्साफ़ी नहीं कि जो सोज़ो-गुदाज़ मीर हसन के कलाम में है वह नसीम के कलाम में नहीं।"

उनके आधुनिकता सम्बन्धी विचार दिखाने के लिए उनकी नज़्मों के उद्धरण ठीक रहेंगे। एक नज़्म 'दर्दे-दिल' में जो कश्मीरी पंडितों की कान्फ्रेंस के लिए लिखी गई थी, वे विलायत से पूरे अंग्रेज बनकर लौटनेवालों को इस तरह खरी-खोटी सुनाते हैं

हज़्जे-अकबर[1] से जो योरुप के हुए हैं मुमताज़[2]
हैं वतन में भी ग़रीबुलवतनी[3] पर उन्हें नाज़
ग़ैर याराने-तरीक़त[4] से है ग़ैरों से है साज़
यह बनाई हुई चितवन वो अनोखे अंदाज़

लबो-लहजे में लगावट है तरहदारी है
इक फ़क़त रंग पे क़ाबू नहीं लाचारी है।

उनको तहज़ीब से योरुप की नहीं कुछ सरोकार
ज़ाहिरी शानो-नुमायश पे दिलो-जां हैं निसार
हैं वो सीने में कहाँ ग़ैरते-क़ौमी के शरार
जिससे योरुप में हुए ख़ाक के पुतले बेदार

सैरे-योरुप से ये इख़लाक़ो-अदब सीखा है
नाचना सीखा है और लह्वो लअब[5] सीखा है।

---

1. महातीर्थयात्रा, 2 सम्मानित, 3. परदेसीपन 4. सहधर्मियों,
5. क्रीड़ा और विलास।

एक अन्य नरम मुरक्कए इबरत में, जो उन्होंने 1898 में कश्मीरी पंडितों की कान्फ्रेंस के लिए लिखी थी, वे कहते हैं :

आजादी-ओ-इस्लाह के जब आते हैं अफकार[1]
तक़लीद हो योरप की यही रहती है गुफ्तार
मौजूद मगर इनमें वो जौहर नहीं जिनहार[2]
मग़रिब में जो तहज़ीबो-तरक़्क़ी के हैं असरार[3]
वह हुब्बे-वतन खून मे शामिल नहीं रखते
गो वलवले रखते हैं मगर दिल नहीं रखते ।

ये खित्तए-योरप मे जो इस्लाह के बानी[4]
आज़ादो-ए-क़ौमी पे सह् कर गए पानी
मुरझा गए कितने के गुले-बागे-जवानी
उस नहल[5] से पर दूर रहा रंगे-खिज़ानी
सरगर्म-शहादत थे वो ईसार की खू से
सींचा चमने-क़ौम रगे-जां के लहू से ।

उपर्युक्त शेरों से अच्छी तरह साबित हो जाता है कि वे पश्चिमी संस्कृति से देशप्रेम की भावना और सच्ची लगन के अलावा कुछ नहीं लेना चाहते थे। वे इस बात को हास्यास्पद समझते थे कि पश्चिम की नकल नाच, वस्त्रों, चालढाल जैसे बाह्य सांस्कृतिक लक्षणों में की जाए।

युवतियों को नसीहत

सन् 1917 में उन्होंने अपनी बिरादरी की लड़कियों के लिए एक शिक्षात्मक नज़्म 'फूलमाला' के शीर्षक से लिखी। इसके कई शेरों से मालूम होता है कि प्रगति और पश्चिमी संस्कृति की नक़ल के बारे में उनके क्या विचार थे :

नाम रक्खा है नुमायश का तरक़्क़ी-ओ-रिफ़ार्म
तुम इस अदाज़ के धोखे में न आना हरगिज़

नक्ल योरप की मुनासिब है मगर याद रहे
खाक में ग़ैरते-क़ौमी न मिलाना हरगिज़

रंगो-रोग़न तुम्हें योरप का मुबारक लेकिन
क़ौम का नक़्श न चेहरे से मिटाना हरगिज़

1. विचार, 2. कदापि, 3. रहस्य, 4. प्रवर्तक, 5. वृक्ष।

जो बनाते हैं मुनाफ़ा का खिलौना तुमको
उनकी ख़ातिर से ये ज़िल्लत न उठाना हरगिज़

पूजने के लिए मंदिर है जो आज़ादी का
उसको तफ़रीह का मरकज़ न बनाना हरगिज़

चकबस्त कभी-कभी ग़ज़लों में भी यह विचार प्रकट कर देते थे। नीचे उनकी ग़ज़लों के दो ऐसे ही शेर दिए जा रहे हैं :

नई तहज़ीब के सदक़े न शरमाने दिया दिल को
रहे मंतिक़ के परदे में करिश्मे बेहयाई के

हुआ मिज़ाज का आलम ये सैरे-योरुप से
कि अपने मुल्क की आबो-हवा को भूल गए

उपर्युक्त उद्धरणों से किसी पर यह प्रभाव न पड़े कि चकबस्त पुराने ख़यालात के आदमी थे इसलिए मैं यह दोहराना चाहता हूँ कि यह सब लिखने के समय ही उन्होंने विधवा विवाह जैसे समाज सुधार का समर्थन किया था। वे पुरानी लीक पर आँखें बन्द करके चलने के विरुद्ध थे और आँखें बन्द करके योरोपीय संस्कृति की नक़ल के भी विरुद्ध थे। वे समाज सुधार का तर्कपूर्ण ढंग अपनाना चाहते थे जिसमें दोनों संस्कृतियों की अच्छी बातों को लेकर उन्हें एक समन्वित संस्कृति के रूप में संयुक्त कर दिया जाए।

लेकिन यह सोचना ग़लत होगा कि चकबस्त की निगाह भविष्य तक जाती थी। वे पूरी तरह 'वर्तमान' के आदमी थे। अगर उन्हें भविष्य की धुँधली-सी भी तसवीर दिखाई देती तो उन्होंने गांधी जी के असहयोग आंदोलन का जी-जान से विरोध न किया होता, ख़ास तौर पर जब वे ख़ुद गांधी जी की आत्मत्याग की भावना के बड़े प्रशंसक थे।

वे विज्ञान और टेक्नॉलॉजी की उन्नति को भी संदेह से देखते थे। 'सुबहे-उम्मीद' के मार्च 1920 के अंक में उन्होंने लिखा :

"फ्रांस की एक अंजुमन ने यह इश्तिहार दिया है कि जो शख़्स सैयारों (ताराओं) से सिलसिलए-वाक़फ़ियत पैदा करने का ज़रिया दरयाफ़्त करेगा उसे इनाम दिया जाएगा। दुनिया के संजीदामिज़ाज लोग इस जिद्दतआमेज़ तहरीक से हैरान हैं।...हमारी राय यह कि कम-से-कम उस वक़्त तक इस इश्तिहार का ऐलान मुल्तवी कर दिया जाए जब तक प्रेज़ीडेंट के चौदह मक़ूलों का फ़ैसला न हो जाए।"

इस अंतरिक्ष यात्रा के युग में इस प्रकार के विचारों पर टिप्पणी करने की ज़रूरत नहीं है।

वे वायुयानों को भी, जो उनके समय में नयी-नयी प्रचलित हुई थी, आसानी से स्वीकार नहीं करना चाहते थे। इस आविष्कार का उल्लेख उन्होंने अर्ध परिहास के स्वर में किया है। सन् 1911 में उन्होंने जो गजलें लिखी उनमें निम्नलिखित तीन शेर भी हैं

आबो-आतिश की गुलामी पर क़रार क़ानिअ[1] नहीं
हो रही है फिक्र तस्ख़ीरे-हवा[2] के वास्ते

हवा में उड़ के सैरे-आलमे-ईजाद[3] करते हैं
फरिश्ते भी नहीं करते जो आदमज़ाद करते हैं

पर लगे तह्ज़ीब को किश्तीए-नौईजाद से
ख़िदमते-आबे-रवां[4] लेता है इंसां बाद[5] से

दूसरे शेर में 'हवा' का अर्थ 'लालच' लेना चाहिए तभी बात बनेगी क्योंकि फरिश्ते तो हवा में उड़ते ही है। तीसरे शेर में वायुयानों के पंखों के लिए पर लगना उपहास के तौर पर कहा गया है क्योंकि पर लगने का मुहावरा हैसियत से ज्यादा काम करने के लिए आता है।

इस बात की पूरी सम्भावना है कि बाद में चकबस्त ने वायुयान के बारे में अपने विचार बदल दिये हों। लेकिन हमारे पास न इस बात के सबूत में कुछ है न काट के लिए।

1. संतुष्ट, 2. वायु का नियंत्रण, 3. सृष्टि की सैर, 4 बहते पानी का काम, 5 हवा।

4

साहित्यिक-सृजन

संतुलित समर्पण

यह पहले ही कहा जा चुका है कि चकबस्त ने यह जानते हुए भी कि उनमें काव्य-सृजन की विलक्षण प्रतिभा है काव्य-सृजन को प्राथमिकता नहीं दी और अपनी प्रतिभा का प्रयोग अपने सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों के लिए किया। मुझे यह कहने में जरा भी झिझक नहीं है कि उन्होंने देश भक्ति की वेदी पर अपनी कविता की बलि दे दी। स्वभावतः ही उनकी कविता में अधिकांश भाग देशभक्ति सम्बन्धी है लेकिन इस काव्य पर बहस करने के पहले यह देखने की जरूरत है कि उनकी देशभक्ति का स्वरूप क्या था। हम उनकी देशभक्ति के राजनीतिक पहलू पर विचार अभी नहीं करेंगे क्योंकि पहले ही इस पर बहस की जा चुकी है। किन्तु उनकी देशभक्ति के मनोवैज्ञानिक पहलू पर विचार करना जरूरी है।

उनकी कई कविताओं में 'कौम' शब्द से बड़ा भ्रम पैदा होता है। उर्दू में कुछ लोग इससे राष्ट्र का अर्थ लेते हैं और कुछ लोग जाति या धर्मसमुदाय का। चकबस्त ने इसका प्रयोग दोनों अर्थों में किया है। अपनी प्रारम्भिक नज़्मों में जो उन्होंने कश्मीरी पंडितों की कान्फ्रेंस के लिए लिखी थीं इस शब्द का प्रयोग उन पंडितों के समुदाय के लिए किया गया है। अपनी बाद वाली नज़्मों में उन्होंने इसका प्रयोग राष्ट्र के लिए किया। यदि इस शब्द के बारे में द्वयर्थक भ्रम न हो तो भी आज के धर्मनिरपेक्ष लोग पूछ सकते हैं कि एक जाति प्रेमी को राष्ट्र प्रेमी किस प्रकार कहा जा सकता है।

राष्ट्रप्रेम की दो प्रकार की धारणाएँ होती हैं। एक के अनुसार तो राष्ट्र हित के लिए सारे अन्य विचार छोड़ दिये जाते हैं और राष्ट्र के नाम पर चीज़ का बलिदान कर दिया जाता है। इस शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश क्रांतिकारियों के लिए राष्ट्रप्रेम की ऐसी ही धारणा थी और वे इसमें थे। उनमें से हर एक ने मातृभूमि के लिए बड़े-बड़े बलिदान किए, न उन्हें स्त्र और बच्चों की चिन्ता थी न बूढ़े माता-पिता की। दूसरी धारणा के

अनुसार विभिन्न कर्तव्यों के साथ राष्ट्रप्रेम का तारतम्य स्थापित किया जाता है। स्वभावतः ही इस धारणा में बलिदान का तत्त्व नहीं रहता क्योंकि अगर किसी एक हित के लिए बलिदान किया जाएगा तो दूसरे ऐसे हितों की हानि होगी जिनके प्रति भी वचनबद्धता है। जिन व्यक्तियों में इस धारणा के अनुसार राष्ट्रप्रेम होता है वे अपने परिवार, अपनी जाति, अपने नगर और अपने प्रदेश के प्रति भी अपने कर्तव्य निभाते रहते हैं।

हम पहले ही देख चुके हैं कि चकबस्त राजनीति में उदारवादी या नरम-दली विचारधारा रखते थे। अतएव उनकी राष्ट्रप्रेम की धारणा दूसरे प्रकार की थी। उन्होंने अपने पेशे पर अच्छी तरह ध्यान दिया ताकि परिवार के प्रति वे अपना कर्तव्य निभा सकें। वे अपनी जाति के सामाजिक वातावरण को सुधारने के लिए भी प्रयत्नशील रहे। उन्होंने हिन्दू संस्कृति को पुष्ट करने का भी भरसक प्रयत्न किया। और इन सबके साथ ही उन्होंने देशवासियों को स्वशासन दिलाने के लिए वह सब कुछ किया, जिन्हें वे ठीक समझते थे। लेकिन उन्होंने छोटी वफादारियों को बड़ी वफादारियों के आड़े नहीं आने दिया। यदि हम सम्बन्ध में हम अपने मस्तिष्क को साफ नहीं रखेंगे तो चकबस्त के राष्ट्रप्रेम के संदर्भ में बड़े भ्रम में पड़ जायेंगे।

चकबस्त का काव्य मुख्यतः राष्ट्रवादी काव्य है। इस अवधारणा का सबसे बड़ा सबूत यह है कि यद्यपि स्वयं चकबस्त के जीवनकाल में देश की राज-नीतिक धारा बदल गयी थी और परिणामतः राष्ट्रप्रेम की धारणा भी बदल चुकी थी तथापि काफी लम्बी अवधि तक उनकी कविताएँ स्वतन्त्रता के सैनिकों को प्रेरणा देती रहीं। उनके देश प्रेम की निष्ठा का प्रभाव सत्तात्मक था। किसी ने इस बात की परवाह नहीं की कि स्वयं चकबस्त बाद के स्वतन्त्रता सेनानियों के विचारानुसार देशभक्त कहे जा सकते हैं या नहीं। स्वतन्त्रता संग्राम के अंतिम तीन दशकों में बराबर चकबस्त की कविताएँ राष्ट्रगीतों के संग्रहों में, जो जन जागरण के उद्देश्य से छापे जाते थे, स्थान पाती रहीं।

राष्ट्रवादी कविता का परिमाण

चकबस्त के काव्य संग्रह में राष्ट्रवादी तत्त्व का सांख्यिकी के आधार पर निरूपण भी दिलचस्पी से खाली नहीं होगा। उनकी नज़्मों की संख्या 45 है। इनमें से 12 नज़्में पूर्णतः राष्ट्रप्रेम को समर्पित हैं। इनमें कुल मिलाकर 365 शेर हैं जो चकबस्त की नज़्मों में कुल शेरों का 22.90 प्रतिशत है। इनके अलावा सात और नज़्में—देशभक्तों के मरसिए—हैं, जिनमें राष्ट्रप्रेम-भावना ही उभर कर आती है अतएव इन्हें भी राष्ट्रवादी कविताओं में गिनना चाहिए। इन सात मरसियों में 244 शेर हैं जो उनके सारे नज़्म के शेरों का

15 74 प्रतिशत हैं । इस प्रकार उनकी नज्मों के शेरों में कुल मिलाकर 38 64 प्रतिशत राष्ट्रवादी शेर हैं । मैंने उन छिट-पुट शेरों को गिनने से छोड़ दिया है जो अन्य विषयक नज्मों में आये हैं और राष्ट्रप्रेम का उद्दीपन करते हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि उनकी विषयगत कविताओं अत्यधिक भाग राष्ट्रवादी काव्य का है।

चकबस्त ने कई ग़जलें भी लिखी हैं हालांकि अन्य उर्दू कवियों की पद्धति के विरुद्ध उन्होंने नज्मों में अधिक काव्य सृजन किया है ग़ज़लों में कम। उनके कुल शेरों की संख्या 2025 है। इनमें ग़ज़ल के शेर 477 है, यानी चौथाई से भी कम।

परम्परा के अनुसार गजल की मूल भावना प्रेम भावना होती है। दूसरे नम्बर पर ग़ज़ल के शेरों में करुणा भाव उभरता है। शेष भाग में यदा-कदा दार्शनिक चिन्तन और नीति-शिक्षा देखी जा सकती है। गजल के स्वर के साथ धर्म की तरह राष्ट्रप्रेम का सीधा वर्णन उपयुक्त नहीं समझा जाता। चकबस्त परम्परा को बहुत महत्व देते थे फिर भी उन्होंने इस निषेध की चिन्ता नहीं की और अपनी गजलों में प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रप्रेम का प्रकाशन जायज समझा। उन्होंने कुल 58 गजलें लिखीं। इनमें 25 गजलों में ऐसे शेर हैं जो राष्ट्रप्रेम को व्यक्त करते हैं—छः ग़ज़लें तो ऐसी हैं जिसमें राष्ट्रप्रेम के अतिरिक्त और कोई भाव लगभग है ही नहीं। उनकी गजलों में 80 शेर राष्ट्रप्रेम विषयक हैं, यानी कुल गजल के शेरों का 16.77 प्रतिशत।

उनकी नज्मों और गजलों के शेरों की कुल मिलाकर संख्या 2025 है। इनमें से 689 शेर, (34 02 प्रतिशत) राष्ट्रप्रेम सम्बन्धी हैं। जहाँ तक राष्ट्र-प्रेम सम्बन्धी कविता के अनुपात का सम्बन्ध है उर्दू का अन्य कोई कवि चकबस्त के पास तक फटक नहीं सकता। मेरे विचार में अन्य भाषाओं में भी, ऐसे बहुत थोड़े ही कवि होंगे जो इस क्षेत्र में चकबस्त का मुकाबला कर सकें।

गुणात्मकता के विचार से चकबस्त की राष्ट्रवादी कविता अन्य कवियों की अपेक्षा काफी ऊँचे स्तर की है। इन कविताओं में हमें एक उत्कट राष्ट्र प्रेमी के दर्शन उनकी प्रत्येक मनोदशा—उत्साहपूर्ण, कुण्ठित, विषादपूर्ण, प्रेरणा-दायक, कटुतापूर्ण आदि—में होते हैं। कुछ उदाहरण लें। सन 1918 में उन्होंने 'नाला-ए-दर्द' शीर्षक से एक नज्म उस समय लिखी थी जब कई उदारवादी नेता कांग्रेस से अलग हो गए थे। चकबस्त ने अपनी पत्रिका में उनके कांग्रेस त्याग को उचित ठहराया था। इसके बावजूद इस राष्ट्रीय अलगाव से उनका हृदय फटने लगा और उन्होंने उपर्युक्त नज्म में लिखा :

कुछ मज़ब रंगे-चमन बदला हुआ है आजकल
गुंचओ-गुल सूरते-शबनम हवा होने को हैं
गर यही है गर्दिशे-दौरां[1] का रंगे-इनक़लाब
होश उड़ जायेंगे यह कितने बफ़ा होने को हैं
जुर्रते-इख़लाक़[2] तेरे इम्तहां का वक्त है
ख़ुद अज़ीज़ाने-वतन हमसे ख़फ़ा होने को है
मादरे-नाशाद[3] रोती है कोई सुनता नहीं
दिल जिगर से भाई से भाई जुदा होने को है

इस नज़्म में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य यह बात है कि यद्यपि कवि की राय कांग्रेस के नये नेताओं के प्रति अच्छी नहीं है और नज़्म के पहले अंश में यह राय स्पष्ट भी कर दी गई है फिर भी वह कांग्रेस के दोनों गुटों को भाई-भाई कहता है और उनके मतभेद को दुर्भाग्यपूर्ण।

सन् 1914 में उन्होंने योरोपीय समरांगण में जानेवाले भारतीय सैनिकों को विदाई देने के लिए एक नज़्म लिखी। यह नज़्म उत्तेजक और प्रेरणादायक काव्य का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। इस नज़्म का एक बन्द है .

हां दिलेराने-वतन[4] धाक बिठा कर आना
तनतना[5] जर्मने-ख़ुदबीं[6] का मिटाकर आना
क़ैसरी तख़्त की बुनियाद हिलाकर आना
नद्दियां ख़ून की बर्लिन में बहाकर आना
यही गंगा है सिपाही के नहाने के लिए
नाव तलवार की है पार लगाने के लिए

नियन्त्रित प्रेरणा

जब सैनिकों को युद्ध के लिए प्रेरित किया जाता है तो उन्हें शत्रु विनाश के लिए कहा जाता है। किन्तु कवि का अपना स्वभाव और उसकी विशिष्ट देशभक्ति उसमें इन शब्दों में क्षत्रिय-धर्म के पालन की प्रेरणा दिलवाती है :

गोकि दुनियां से मिटे शौकते-क़ैसर का सुराग़[7]
शोलए-तेग़ से मुरझाए न तहज़ीब का बाग़
गुल न हो दिल के शिवाले में हमीयत[8] का चिराग़
लहू का न हो तलवार पे दाग़
रास्ता है यही क़ौमों की तबाही के लिए
का दोज़ख़ है सिपाही के लिए

देश के जवानों, 5 गौरव।

चकबस्त की उल्लेखनीय प्रेरक काव्य-भर्त्सना का एक और बहुत अच्छा उदाहरण उनकी नज़्म 'वतन का राग' है जो 1917 में लिखी गयी। उसका एक छन्द है :

पिन्हाने वाले अगर बेड़ियाँ पिन्हाएँगे
ख़ुशी से क़ैद के गोशे को हम बसाएँगे
जो सन्तरी दरे-ज़िंदाँ के सो भी जाएँगे
ये राग गा के उन्हें ख़्वाब से जगाएँगे
तलब फ़ुज़ूल है काँटे की फूल के बदले
न लें बिहिश्त भी हम होमरूल के बदले

इन नज़्म में चकबस्त जोश में आकर उस सीमा को भी पार कर गए हैं जो उनके राजनीतिक सिद्धान्त, संवैधानिक संघर्ष, ने उन पर लगायी थी। इसमें उन्होंने निष्क्रियात्मक अवज्ञा के तरीक़े की, जो महात्मा गांधी ने आरम्भ किया था, प्रशंसा की है।

सन् 1914 में लिखी हुई नज़्म फ़रियादे-क़ौम में, जो कि दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा पर लिखी गयी है, चकबस्त का स्वर अधीरता और तीव्र आग्रह का हो गया है। वे कहते हैं

जो अब भी बैठ रहे सर उठाओगे फिर क्या
उदूए-क़ौम[1] को नीचा दिखाओगे फिर क्या
जफ़ा-ओ-ज़ौर[2] की ज़िल्लत मिटाओगे फिर क्या
तुम अपने बच्चों को क़िस्से सुनाओगे फिर क्या
रहेगा क़ौम पही उनसी उनकी माओं का
लहू रगों में तुम्हारी है बेहयाओं का

चकबस्त राष्ट्र प्रेम की कविताओं में परिहास का भी प्रयोग करते हैं। वाइसराय लार्ड कर्ज़न के कलकत्ता विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण की कुछ बातों के विरोध में उन्होंने एक लम्बी हास्यात्मक नज़्म लिखी। उसके कुछ शेर यह हैं :

या इलाही ये चली बादे-मुख़ालिफ़[3] कैसी
आ गया उड़के जो लंदन से ये कूड़ा कर्कट
है अगर मुल्क में जो बार तहम्मुल[4] अब भी
[illegible]ती तेरे मुल्क'ह्म में जो लेते हैं उभर
[illegible] रस हम समझ भी न तुझे भूलेगी
[illegible] और को देहना को हार

[illegible]

हम देख चुके हैं कि राष्ट्रप्रेम के विषयों को उठाने में उन्होंने प्रत्येक भावना से काम लिया है। इनमें करुणा भी शामिल है। सन् 1920 में तिलक महाराज की मौत पर उन्होंने जो मरसिया लिखा है उसमें करुण रस देखते ही बनता है। चकबस्त तिलक की राजनीतिक कार्य पद्धति के विरोधी थे किन्तु उन्हें महान देशभक्त मानते थे। मरसिए का पहला ही बन्द है

मौत ने रात के परदे में किया कैसा वार
रौशनी सुब्हे-वतन की है कि मातम का गुबार
मारिका[1] सर्द है, सोया है वतन का सरदार
तनतना[2] शेर का बाकी नहीं सूनी है कछार
बेकसी छाई है तकदीर फिरी जाती है
कौम के हाथ से तलवार गिरी जाती है

इस विषय को खत्म करने से पहले चकबस्त की गजलों से उदाहरण-स्वरूप दो राष्ट्रप्रेम विषयक शेर उद्धृत किये जा रहे हैं

वतन में बेवतन मुझको किया है इक फसूंगर[3] ने
न मैं हिन्दोस्तां का हूँ न है हिन्दोस्तां मेरा

दिल में इस तरह से अरमान है आज़ादी का
जैसे गंगा में झलकती हो चमक तारों की

जीवन दर्शन

चकबस्त की प्रशंसा मुख्यतः राष्ट्रप्रेमी कवि के रूप में की जाती है। किन्तु बात यहीं खत्म नहीं हो जानी चाहिए। उनके काव्य-सर्जन के अल्प प्रयत्न और उनकी कविता को साध्य की बजाए साधन के रूप में लेने के आग्रह के बावजूद उनकी गजलों और रुबाइयों में उनकी व्यक्तिगत चिंताधारा के तत्वों के दर्शन होते हैं। गज़ल में कवि की कल्पना पर कोई बंधन नहीं होता। इसलिए यदि किसी कवि की कोई वैयक्तिक विचारधारा होती है तो उसकी झलक उसकी गजलों में मिल ही जाती है।

गज़ल में दार्शनिक विषयों के प्रकाशन की परम्परा काफी पुरानी है। हाफ़िज़ शीराज़ी के समय से अब तक उर्दू और फारसी गजलों में दार्शनिक उक्तियाँ बराबर जगह पाती रही हैं। इस सिलसिले में वैयक्तिक और परम्परागत दार्शनिक उक्तियों में भेद करना भी जरूरी है। फ़ारसी और उर्दू काव्य पिछले सात सौ सालों से सूफ़ीवाद के प्रभाव में रहा है। यह प्रभाव हाफ़िज़ से भी पहले का है। सूफ़ीवाद एक सम्पूर्ण और शक्तिवान दर्शन है

1. युद्ध, 2 गरज, 3 जादूगर।

किन्तु यह दर्शन कवियों ने स्थापित नहीं किया। यद्यपि लगभग सभी कवि इस दर्शन में विश्वास करते दिखायी देते हैं तथापि उन्होंने इस दर्शन के अंशों या अपरिहार्य निष्कर्षों का दिग्दर्शन कराते हुए जो शेर लिखे हैं उन्हें दार्शनिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह बातें उनकी सीखी हुई हैं, जिन्हें उन्होंने सत्य भी पाया। शुद्ध दार्शनिक उक्तियाँ वे कही जायेंगी जिन्हें कवि ने स्वयं जीवन में देखा और अनुभव किया है।

सही अर्थों में दार्शनिक उक्तियाँ वे होती हैं जिनमें सिद्धांतों का स्पष्ट प्रतिपादन हो, जैसा 'इकबाल' के काव्य में दिखाई देता है। किन्तु दार्शनिकता और ग़ैर दार्शनिकता के बीच कोई स्पष्ट सीमा रेखा नहीं बनायी जा सकती। ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब पारम्परिक दर्शन को इस तरह पेश किया जाए कि उसका कोई नया पक्ष उभर कर आये। ऐसी दशा में भी कवि की उक्ति को दार्शनिक कहना चाहिए। कभी दर्शन संबंधी प्रश्न भी इस प्रकार किये जा सकते हैं कि वे उत्तर विशेष की इंगित करें। इन प्रश्नों को भी दार्शनिक उक्तियों के अंतर्गत लाना चाहिए।

चकबस्त को दार्शनिक कवि के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। वे स्वयं भी अपने को दार्शनिक कवि नहीं मानते थे। उनकी रचनाओं का कोई भाग ऐसा नहीं है जिसमें जीवन की मूल समस्याओं का स्पष्टीकरण हो। उनका विश्वास हिन्दू मान्यताओं की शक्ति में था और राजनीति में उनका विश्वास सांवैधानिक प्रजातंत्रीय कार्य-कलापों पर था। यह दोनो बातें उन्होंने दूसरो से सीखी तथा अन्य लोगो को सिखायी। किंतु यह बात पूरे आत्मविश्वास के साथ कही जा सकती है कि अगर चकबस्त ने अपने सामाजिक और राजनीतिक मिशन को सर्वोच्च प्राथमिकता न दी होती और अपने व्यक्तिगत जीवनदर्शन को विकसित किया होता तो वे दार्शनिक कवियों की सूची में आ जाते। कारण ... कि उनकी व्यक्तिगत चिंताधारा बहुत स्पष्ट और बगैर उलझनवाली है। कुछ ... की विशेषता के आधार पर उनके कुल शेरो का उद्धरण बहुधा शेर यह ... किंतु अभी तक किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि ... क्या दृष्टिकोण था।

... की कमी इसलिए और खटकती है कि उनकी ग़ज़लों ...) शेरों में उनके वैयक्तिक दृष्टिकोण तथा ... मेरी दृष्टि गयी है। चकबस्त उन उक्तियों ... उभरे दिखायी पड़ते है। उनके प्रेरणा- ...—यह दोनो तत्व ब्रिटिश ... जीवन के कटु यथार्थों ... अनजाने ही, उन्हें

1. देश का

अंतर्विरोधों के दर्शन को स्वीकार करने को विवश कर दिया था । इन तीन प्रमुख अभिव्यक्ति स्वरों के नीचे तीन और स्वर चलते हैं भौतिकवाद की सीमाएँ छूने वाला यथार्थवाद (वैदिक अद्वैतवाद में उनके दृढ़ विश्वास के बावजूद), परम्परावाद और नैतिकतावाद । इनके अलावा उनकी गजलों में कहीं-कहीं मानवतावाद और सौंदर्य बोध के दर्शन होते हैं ।

चकबस्त का जीवन दर्शन उत्साह से आरम्भ होता है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं

बुढ़ापा नाम है जिसका वो है अफसुर्दगी दिल की
जवानी कहते हैं जिसको तबीयत की जवानी है

यह दिल की ताज़गी है वो दिल की फसुर्दगी
इस गुलशने-जहाँ की खिज़ाँ क्या बहार क्या

मैं जवानी है मिरी दिल मिरा मैखाना है
याँ सुराही है न शीशा है न पैमाना है

इक हस्तिए-बेदार के हैं दोनों करिश्मे
मौजों में रवानी है जवानी है बशर में

दिले-अहबाब में घर है शिगुफ्ता रहती है खातिर
यही जन्नत है मेरी और यही बाग़े-इरम मेरा

मर्यादित उत्साह

यह ध्यान रहे कि चकबस्त का जीवन के प्रति उत्साह अनियन्त्रित या ग़ैर जिम्मेदाराना नहीं है । इस उत्साह से व्यक्ति स्वयं ही प्रसन्न नहीं होता औरों को भी प्रसन्न करता है । फिर भी जीवन के कठोर तथ्य हमें भगवान बुद्ध की भाँति जीवन की निराशाप्रद स्थिति को मानने पर विवश कर देते हैं। चकबस्त इन तथ्यों को स्वयं देखते हैं और किसी अन्य दर्शन से कुछ लिए बग़ैर इनकी अभिव्यक्ति कर देते हैं । वास्तविकता यह है कि अस्तित्ववाद के प्रभाव से हम आज के काव्य में जिस शुद्ध नैराश्य को देखते हैं उसकी पहली थरथराहट हमें चकबस्त के काव्य में दिखाई देती है । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

कहाँ अहातए-हस्ती से भाग कर जाऊँ
नयी ज़मीन नया आसमाँ नहीं मिलता

अंतर्विरोधों के दर्शन को स्वीकार करने को विवश कर दिया था। इन तीन प्रमुख अभिव्यक्ति स्वरों के नीचे तीन और स्वर चलते हैं भौतिकवाद की सीमाएँ छूने वाला यथार्थवाद (वैदिक अद्वैतवाद में उनके दृढ़ विश्वास के बावजूद), परम्परावाद और नैतिकतावाद। इनके अलावा उनकी ग़ज़लों में कहीं-कहीं मानवतावाद और सौंदर्य बोध के दर्शन होते हैं।

चकबस्त का जीवन दर्शन उत्साह से आरम्भ होता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

बुढ़ापा नाम है जिसका वो है अफ़सुर्दगी दिल की
जवानी कहते हैं जिसको तबीयत की जवानी है

यह दिल की ताज़गी है वो दिल की फ़सुर्दगी
इस गुलशने-जहाँ की ख़िज़ाँ क्या बहार क्या

मैं जवानी है मिरी दिल मिरा मैख़ाना है
याँ सुराही है न शीशा है न पैमाना है

इक हसरते-बेदार के हैं दोनों करिश्मे
मौजों में रवानी है जवानी है बशर में

दिले-अहबाब में घर है शिगुफ़्ता रहती है ख़ातिर
यही जन्नत है मेरी और यही बाग़े-इरम मेरा

मर्यादित उत्साह

यह ध्यान रहे कि चकबस्त का जीवन के प्रति उत्साह अनियन्त्रित या गैर जिम्मेदाराना नहीं है। इस उत्साह से व्यक्ति स्वयं ही प्रसन्न नहीं होता औरों को भी प्रसन्न करता है। फिर भी जीवन के कठोर सत्य हमें भगवान बुद्ध की भाँति जीवन की 'नाशवान' स्थिति को मानने पर विवश कर देते हैं। चकबस्त इन सत्यों को स्पष्ट देखते हैं और किसी अन्य दर्शन से कुछ भिन्न प्रकार इनकी अभिव्यक्ति कर देते हैं। कारण शायद यह है कि अनिश्चितता के प्रभाव से हम आज के भारत के जिस युद्ध नैराश्य को देखते हैं उसकी एहसास धारणा- [illegible] चकबस्त के काव्य में दिखाई देती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

कहाँ अहसासे-हस्ती से भाग कर जाऊँ
[illegible] आसमा कहीं ठिकाना

अजल की नींद में भी ख्वाबे-हस्ती गर नजर आया
तो फिर बेकार है तंग आ के इस जीने से मर जाना

जिंदगी तल्खिए-अय्याम[1] का अफ़साना है
जहर मरने के लिए उम्र का पैमाना है

अदम से आए थे दुनिया में क्या मालूम था हमको
रहेगा साथ सौदा[2] जिंदगी का दर्दे-सर होकर

खत्म होता नहीं क्यों हस्तिए-नाशाद का राग
पा-ब-गिल[3] जिस्म सही रूह तो मजबूर नहीं

इस भाववैभिन्य का अवश्यभावी परिणाम है जीवन को अंतर्विरोधों के जमाव के रूप में स्वीकार करना। मेरे विचार से चकबस्त ने न हीगल के दर्शन का गंभीर अध्ययन किया था न वेदान्त का। उनकी निजी अनुभूतियों ने उनसे ऐसे शेर कहलवाये होंगे :

वह नहीं बदनाम जिसने दिल को है पैदा किया
दिल से जो पैदा हुई वह आरजू बदनाम है

चमन को दीदए-इबरत से देख ऐ बुलबुल
गुलों से फूट के रंगे-खिजां निकल आया

गुल को पामाल न कर लालो-गुजर के मालिक
है इसे तुर्रए-दस्तारे-ग़रीबां[4] होना

कहा गुंचे ने हंस कर वाह क्या नैरंगे-आलम[5] है
वजूदे-गुल जिसे समझे हैं सब वह है अदम[6] मेरा

चाक होकर कफ़ने-गुंचा बना जामए-गुल
खुल गया रंज से शादी का नुमायां होना

हम सोचते हैं रात में तारों को देख कर
शमएं जमीं की हैं कि ये दाग़ आसमां के हैं

1. समय की कड़वाहट 2 उन्माद 3. मिट्टी में फंसा 4. निर्धनों की पगड़ी का तुर्रा
5. संसारवैचित्र्य 6. अनस्तित्व।

इस मन स्थिति से ऐसा यथार्थवाद जन्म लेता है जो भौतिकवाद के समीप जा पहुँचता है । चकबस्त ने भौतिकवाद को अपना जीवन दर्शन कभी नहीं माना, फिर भी वे कहते हैं :

रह के दुनिया में है यूं तर्के-हवस की ख्वाहिश
जिस तरह अपने ही साए से गुरेजा[1] होना

जिंदगी क्या है अनासिर[2] में ज़हूरे-तरतीब[3]
मौत क्या है इन्हीं अजज़ा[4] का परेशा[5] होना

बादे-फना[6] फ़ुज़ूल है नामो-निशां की फिक्र
जब हम नहीं रहे तो रहेगा मज़ार क्या

किंतु मुझे असली ताज्जुब इस पर है कि चकबस्त ने एक ऐसी अछूती बात कैसे कह दी जिसे बाद में मनोवैज्ञानिक युग ने वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया :

रहेगी आबो हवा में ख़याल की बिजली
ये मुश्ते खाक[7] है फानी रहे[8] रहे न रहे

अज्ञेयतावाद और नैतिकता

इस यथार्थवाद के साथ ही उपजती है कौतूहल की भावना और इसके बाद अज्ञेयता का दर्शन उपजता है। इन भावनाओं के वाहक कुछ शेर दिये जाते हैं :

असले-बीनिश[9] को तो हस्ती में ख़ुदा की शक है
उनपे हसरत है जो बंदे को ख़ुदा कहते हैं

अगर कोनो-मकां[10] इक शोबदा[11] है उसकी कुदरत का
तो इस दुनिया में आखिर किस लिए आया क़दम मेरा

देखा सुरूरे-बादए-हस्ती[12] का खातमा
अब देखें रंग लाए अजल का ख़ुमार क्या

अफ़शा हुआ न जौरे-क़ज़ाओ-क़दर[13] का राज़
परदा उठा न मस्लहते-किर्दगार[14] का

अपने समस्त यथार्थवाद के बावजूद चकबस्त नैतिकता का दामन नहीं

---

1. पलायन 2 तत्वों 3 संगठन दिखना 4 टुकड़ों 5 छिन्न-भिन्न 6 मिटने के बाद 7. मुट्ठी भर मिट्टी 8. नश्वर 9 दृष्टागण 9 लोक परलोक 10 चमत्कार 11. जीवन- मदिरा का नशा 12. अधिकार तथा विवशता 13. भगवत इच्छा ।

छोड़ते। उनके शेरों में नैतिक स्वर बड़े स्पष्ट रूप में उभरा है :

रुत्बे में फ़रोतनी[1] के बाला है यह
तहज़ीब की आँखों का उजाला है यह
इंसाँ के लिए है ख़ाकसारी जौहर
अदना से मिले झुक के जो आला है वह

ख़ुद ही मिटा के जौहरे-ईमानो-आगही[2]
हम कोसते हैं गर्दिशे-लैलो-निहार[3] को

ज़माने का मुअल्लिम[4] इम्तहाँ उनका नहीं लेता
जो आँखें खोल कर यह दर्से-हस्ती[5] याद करते हैं

चमनज़ारे-मुहब्बत में उसी ने बाग़बानी की
कि जिसने अपनी मेहनत ही को मेहनत का समर[6] जाना

चकबस्त के ग़ज़ल काव्य से दो और तत्त्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। मानवतावाद और सौन्दर्य बोध। इन तत्त्वों को दर्शाने वाले कुछ शेर देखिए :

दर्दे दिल पासे-वफ़ा जज़्बए-ईमाँ होना
आदमीयत है यही और यही इंसाँ होना

सदफ़[7] की आँख से गौहर को देख इस बह्रे आलम में
नज़ारा कर यतीमाने-जहाँ का चश्मे-मादर[8] से

ख़िदमते-इंसाँ से दिल को आशना करते रहे
दिल के आईने पे उलफ़त की जिला[9] करते रहे

अब चकबस्त की विचार सूक्ष्मता को देखिए :

दोशे-सबा[10] पे रहता हूँ मानन्दे-मुर्ग़े-बू[11]
शाख़े-शजर को बार मिरा आशियाँ नहीं

फ़ना नहीं है मुहब्बत के रंगो-बू के लिए
बहारे-आलमे-फ़ानी[12] रहे रहे न रहे

---

1. नम्रता 2 समझ और सच्चाई 3. रात दिन (समय) का चक्र 4 अध्यापक 5. जीवन रूपी पाठ 6. फल 7. सीपी 8. माँ की आँख 9. सफ़ाई 10. हवा का कंधा 11. सुगंध रूपी पक्षी 12. नश्वर संसार की बहार।

जिला[1] दो दिल को मेरे क़ल्बे-दुश्मन[2] की सियाही ने
कदूरत[3] थी बढ़ी और मां खुले जौहर सफ़ाई के
दफ़्तरे-हुस्न पे मुहरे-यदे-कुदरत[4] समझो
फूल का ख़ाक के तूदे[5] से नुमायाँ[6] होना

मैंने जन्म-जन्मान्तर की हिन्दू धारणा को दर्शाते हुए चकबस्त के दो शेर देखे हैं और एक शेर अतिपरिवर्तनवादी विचार का द्योतक है जिसमें उन्होंने संसार के पुनर्निर्माण के लिए उसके विनाश की बात की है। मेरे विचार में इन्हें अपवाद समझ कर इनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए।

कुल मिला कर चकबस्त का काव्यदर्शन यथार्थवादी है जिसमें रहस्यवाद नहीं है। इसके बावजूद उनके सारे काव्यों में गरिमा, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के स्वर गूंजते रहते हैं।

प्रकृति चित्रण

उर्दू कविता के बारे में एक विचित्र भ्रामक धारणा फैली हुई है कि यह मूलरूप से अन्तर्मुखी है और प्रकृति से तादात्म्य स्थापित नहीं करती। निस्संदेह फारसी और उर्दू काव्य का मुख्य स्वर प्रकृति प्रेम स्वयं उसी उद्देश्य से करने का नहीं है किंतु इन काव्यों के आरंभ काल ही से मानवीय संवेदनाओं की सहायता के उद्देश्य से प्रकृति इस्तेमाल किया जाता रहा है। प्रकृति वर्णन केवल मसनवियों ही में नहीं मिलता, ग़ज़लों में भी बागों, जंगलों, रेगिस्तानों, नदियों, और समुद्रों का उल्लेख प्रेम और मस्ती के भावों के उद्दीपन के लिए किया जाता है। बाद में जब उर्दू मरसियों का विकास हुआ तो चेहरे (भूमिका) में प्रकृतिवर्णन अनिवार्य-सा हो गया। उन्नीसवीं सदी के दो बड़े मरसियाकारों, अनीस और दबीर, ने प्रकृति का चित्रण करने और इसको उपमा, रूपक आदि से अलंकृत करने में बड़ी निपुणता प्राप्त कर ली थी।

इन्हीं दिनों इस्माइली के अंतिम दशकों में 'हाली' और मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' के नेतृत्व में एक आंदोलन शुरू हुआ जिसका उद्देश्य उर्दू में अंग्रेज़ी काव्य के सर्वोत्तम रूपों का समावेश था। चूंकि अंग्रेज़ी काव्य में प्रकृति वर्णन का उज्ज्वल रूप दिखायी देता है अतएव उर्दू में भी बहुत-सी अच्छी ऐसी नज़्में लिखी गयीं, जिनमें प्रकृति चित्रण किया गया था। किंतु इस काव्यधारा में एक बड़ी कमज़ोरी थी। इसमें इतनी [illegible] थी कि यह कविता [illegible] [illegible] थी जबकि [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] की छाप देखने को है।

1 जिलवा, 2 शत्रु का हृदय, 3 मैल, 4 प्रकृति के हाथ की मुहर, 5 ढेर, 6 प्रस्फुटित।

चकबस्त सबसे अधिक 'अनीस' की शैली से प्रभावित थे और उन्होंने 'अनीस' की तर्ज़ पर अपनी लगभग सभी नज़्में मुसद्दस (छ: छ: मिसरों के बंद वाली कविता) के रूप में लिखीं और शब्द प्रवाह भी 'अनीस' की भाँति निर्बाध रखा। कश्मीरी पंडितों की मैगज़ीन के लिए उन्होंने जो नज़्में लिखी हैं उनमें अच्छी-अच्छी भूमिकाएँ हैं जिनमें प्रकृति वर्णन किया गया है। ऐसी भूमिकाएँ उचित ही थी क्योंकि कश्मीरी पंडितों में कश्मीर प्रेम स्वाभाविक है और कश्मीर का नाम लेते ही प्रकृति की मनोरम छटा आँखों के आगे आ जाती है। चकबस्त अपनी नज़्मों की भूमिकाओं में किस तरह प्रकृति वर्णन करते हैं यह दिखाने के लिए उनकी नज़्म 'मुरक्क़ए-क़ुदरत' से, जो उन्होंने 1898 में उक्त मैगज़ीन के लिए लिखी थी, दो बंद दिये जा रहे हैं :—

यह ताइरे-कुहसार[1] लबे-चश्मए-कुहसार[2]
यह सर्द हवा यह करमे-अब्रे-गुहरबार[3]
यह मेवए-पुरज़ारंग यो सरसब्ज़ चमनज़ार
इक आन में सेहत हो जो बरसों का हो बीमार
यह बाग़े-वतन नक़्शे-गुलज़ारे-जिनां[4] है
सरमायए-नाज़े-चमनआराए-जहां[5] है
है खित्तए-सरसब्ज़ पे इक नूर का आलम
हर शाख़े-शजर-पर शजरे-तूर[6] का आलम
परवीं[7] है ये है खोशए-अंगूर का आलम
हर ख़ार पे भी है मिज़ए-हूर[8] का आलम
निकले न सदा ऐसी मुग़न्नी[9] के गुलू से
आती हैं जो आवाज़ें-तरन्नुम लबे-जू[10] से

कभी-कभी चकबस्त ने 'हाली' और 'आज़ाद' की शैली भी अपनानी चाही है। इसका एक उदाहरण उनकी 1900 में लिखी हुई वर्षा-ऋतु सम्बन्धी कविता है। यह बारह शेरों की एक छोटी-सी नज़्म है मगर यह इसी विषय पर कही गयी 'हाली' की लम्बी नज़्म की पासंग भी नहीं है। 'हाली' ने बड़ी सुगठित शैली में इस ऋतु के सभी सम्भव ब्यौरे दिये हैं। उनकी कविता पढ़ते समय हम महसूस करते हैं जैसे हम उन्नीसवीं सदी के लाहौर में वर्षा ऋतु में बैठे हुए हैं। चकबस्त की नज़्म एक तो सुगठित नहीं है फिर उन्होंने इसमें

1. पहाड़ी पक्षी, 2. पहाड़ी स्रोतों के किनारे, 3. मोती बरसानेवाले बादल की कृपा 4. स्वर्गोद्यान की तस्वीर, 5 भगवान की कलात्मकता का पुंज। 6. तूर पर्वत का पेड़, 7. बहुत ऊँचे स्थित तारापुंज, 8. हूर की पलक, 9. गायक,

ग़ज़ल का रंग लाने के लिए मद्यपान के कई विषय उठाये है। यह स्पष्टतः मालूम होता है कि यह उनका रंग नहीं है। यह उनकी प्रारम्भिक कविताओं में से है और कहा जा सकता है कि यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। चकबस्त की अपनी प्रकृति वर्णन शैली उनकी 1916 में देहरादून की प्रशंसा में कही हुई नज़्म में दिखायी देती है। इस सुन्दर कविता की विशेषता यह है कि सुगठित और सशक्त प्रकृतिवर्णन के साथ दार्शनिक उक्तियाँ भी गूँथ दी गई है। चकबस्त की प्रकृति वर्णन शैली को स्पष्ट करने के लिए इस नज़्म के कुछ शेर दिये जा रहे हैं .

तमाम शहर है गर्दो-ग़ुबार से ख़ाली
जिधर निगाह उठाओ उधर है हरियाली
लिबास पहने हैं कुल खिश्तो-संग[1] सब्ज़े का
बजाय खाक के उड़ता है रंग सब्ज़े का
असर खिज़ा का हो क्या ताज़गी के मस्कन[2] में
बहार इसको छुपाए है अपने दामन में
घने दरख़्त हरी झाड़ियाँ ज़मीं शादाब
लतीफ़ो-सर्द हवा पाप साफ़ चश्मए-आब[3]
कमा कभी नहीं शादाबियो के सामाँ मे
ठहर नई बहार आ के इस गुलिस्तां मे

शास्त्रीय परम्परा

'हाली' की तर्ज़ पर प्रकृति सम्बन्धी काव्यसृजन का प्रयत्न करने के पहले चकबस्त ने एक शुद्ध प्रकृति वर्णन की नज़्म 'अनीस' की अलंकृत शैली में लिखी। वे इस शैली में अधिक सफल रहे और बाद की प्रकृति वर्णन वाली कविताओं में भी उसी शैली को पकड़े रहे यद्यपि उन्होंने अलंकरण में कमी कर दी। इस नज़्म का शीर्षक है 'जल्वाए-सुबह' और इसमें प्रातः काल का वर्णन है। इससे कुछ उद्धरण दिये जा रहे है। चकबस्त अपनी नज़्म को उपमाओं की भरमार के साथ आरम्भ करते हैं :

दरियाए-फ़लक मे था अजब नूर का आलम
चक्कर में था गर्दाब-सिफ़त[4] नैयरे-आज़म[5]
उठती थीं शुआओं[6] की जो मौजें[7] वो थो शररदम[8]
सैयारे हबाबों[9] की तरह मिटते थे पैहम

---

1 ईंट पत्थर, 2. निवासस्थान, 3. जलस्रोत।
4 भँवर की तरह, 5. सूर्य, 6 किरणों, 7. लहरें, 8 चिनगारियों जैसी, 9. बुलबुले.

थी शोरिशे-तूफ़ाने-सहर[1] ग़र्ब[2] से ता शर्क़[3]
आख़िर को सफ़ीना[4] महे-गरदूं का[5] हुआ ग़र्क़[6]

बाद मे शुद्ध वर्णन है यद्यपि उसमे पुराने उस्तादो 'अनीस' और 'दबी
जैसा काव्य प्रवाह है ·

वह सुबह का आलम वो चमनज़ार का आलम
मुर्ग़ाने-हवा नग़माज़नी[7] करते थे बाहम
हंगामे-सहर[8] बादे-सहर[9] चलती थी पैहम[10]
आराम में सब्ज़ा था तहे-चादरे-शबनम
हर सिम्त बँधी नारए-बुलबुल की सदा थी
ग़ुंचों की नसीमे-सहरी[11] उक़दा-कुशा[12] थी

प्रकृति वर्णन की शास्त्रीय शैली के अनुसार लगभग हमेशा प्रकृति को भगवान की उपासिका बना दिया जाता है। 'नज़ीर' की कविताओ मे इसके उदाहरण बहुतायत से मिलते है। वे पक्षियो का वर्णन करते समय भी तमाम चिड़ियों को भगवान की प्रशसा करते दिखाते है। चकबस्त ने भी इस शास्त्रीय शैली का निर्वाह किया है। वे कहते है .

मुर्ग़ाने-चमन आलमे-मस्ती मे सहरदम
वस्फ़े-चमनआराए-जहां[13] करते थे बाहम
शाख़ें थीं कहीं गर्दने-तस्लीम-सिफ़त[14] ख़म
तस्बीहे-ख़ुदा[15] में हमा-तन[16] महू थी शबनम
गुंचों के भी थी विर्दे-ज़बां[17] हम्द ख़ुदा की
आती थी चटकने में सदा सल्लेअला[18] की

मालूम होता है कि चकबस्त प्रकृति से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं। उन्होने प्रकृति वर्णन शुद्ध प्रकृति सम्बन्धी नज़्मों के साथ ही देशभक्ति की भावना उभारने के लिए (जैसा उन्होने बच्चों के लिए लिखी दो नज़्मों मे किया है) और मरसियों की शैली में लम्बी कविताओं की भूमिका के तौर पर किया है। इस बात में कोई विशेषता नहीं है क्योंकि कई अन्य कवियों ने भी ऐसा किया किंतु चकबस्त का प्रकृति वर्णन ऐसी जगह भी मिलता है जहाँ उसकी आशा नहीं होती। उदाहरणार्थ लार्ड कर्ज़न की भर्त्सना मे कही हुई लम्बी नज़्म

---

1. सवेरे की बाढ़ का ज़ोर, 2. पश्चिम, 3. पूरब तक, 4. नाव, 5. आकाश का चन्द्रमा, 6. तिरोहित, 7. गायन, 8 सवेरे के समय, 9 सवेरे की बयार, 10. लगातार, 11. सुबह की बयार, 12. गाँठ खोलनेवाली। 13 ससारोद्यान के स्वामी की प्रशसा, 14. आज्ञापालक गरदन की भाँति 15 भगवान-नाम की माला फेरना, 16. पूर्णत, 17 जिह्वा पर, 18. भगवान महान है.

को वे कसीदों की तशबीब की शैली में प्रातःकाल के वर्णन से इस प्रकार शुरू करते हैं :

> वह शबे-तार में[1] तारों का फलक पर जमघट
> छुप गया आंख से बदली जो ज़मीं ने करवट
> देखना शर्क में वह सुबह का तारा चमका
> वह अरूसे-सहरे-नूर[2] ने उलटा घूंघट
> बढ़ के रिजवां[3] ने वो जन्नत के दरीचे खोले
> आई वह गुलशने-फिरदौस से फूलों की लपट
> चौंक उठा पीरे-फलक बांग लगाई ऐसी
> मुर्ग ने गुरबए-मिस्कीं[4] की जो पाई आहट
> गुदगुदाया जो नसीमे-सहरी ने आकर
> नाज़ से सब्ज़ए-ख्वाबीदा[5] ने बदली करवट
> नज़र आता है गुलिस्तां में परिस्तां का समां
> गुल खिले हैं कि है परियों का चमन में जमघट

इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात है कि वे शोकगीतों में भी इस तत्व को ले आते हैं। *उदाहरण के लिए गंगाप्रसाद वर्मा की मृत्यु पर कहे गये उनके* मरसिए का एक बंद देखिए

> पेड़ सरसब्ज़ हैं थालों में रवां आब भी है
> डूबती किरनों से फ़व्वारे में इक ताब भी है
> गुले-नौखेज़[6] भी हैं सब्ज़ए-शादाब भी है
> शाम का वक्त भी है मजमए-अहबाब भी है
> तू कहां है कि जो इस बाग का शैदाई है
> तुझसे मिलने के लिए फ़स्ले बहार आई है

तिलक की मौत पर उन्होंने जो मरसिया लिखा उसका एक बंद है :

> मौत महाराष्ट्र की थी या तेरे मरने की खबर
> मुर्दनी छा गई इंसान तो क्या पत्थर पर
> पत्तियां झुक गईं मुरझा गए सहरा[7] के समर[8]
> रह गए जोश में बहते हुए दरिया थम कर
> सर्दो-शादाब हवा रुक गई कुहसारों[9] को
> रोशनी घट गई दो चार घड़ी तारों को

---

1. अंधेरी रात, 2. प्रभातकाली उषा वधू, 3. स्वर्ग का रखवाला, 4. भोली बिल्ली 5. स्वप्नरत हरियाली। 6 नये खिले फूल, 7. जमना, 8. तट, 9. पहाड़ों।

इन कविताओं को दृष्टिगत रखते हुए मुझे आले अहमद 'सुरूर' के इस कथन से मतभेद प्रकट करना पड रहा है कि चकबस्त का प्रकृति प्रेम सतही है।

भावनाओं का चित्रण

सवेदना काव्य का आधार है। महान कवियों से हमे महान विचारों की निस्सदेह अपेक्षा होती हैं। किन्तु प्रत्येक महान कवि का पहले कवि होना जरूरी है, बाद मे वह महानता प्राप्ति का प्रयत्न कर सकता है। इसका अर्थ यही हुआ कि काव्य चाहे महान हो चाहे साधारण, उसका आधार सवेदनात्मक होता है। चकबस्त के काव्य मे यह आधार बहुत मजबूत है।

सवेदनाएँ भाँति-भाँति की होती है। इनमे आह्लाद, रोष, आश्चर्य, घृणा करुणा, प्रेम सभी आते है। साधारणत. प्रत्येक सवेदना कुछ हद तक सक्रामक होती है। आमतौर पर हम दूसरो को हँसते देख कर प्रसन्न होते हैं और किसी को दाँत पीसते देखकर हम मे भी तनाव आ जाता है। किन्तु सबसे अधिक सक्रामक करुणा की सवेदना होती है। अगर कोई व्यक्ति विक्षिप्त या अपने हित के लिए अत्यधिक चिंतित नही है तो वह किसी दुखी के आर्तनाद से अप्रभावित नही रह सकता। इसीलिए प्रत्येक महाकाव्य मे वे ही अग सबसे अधिक याद रखे जाते है जिनमे आर्तनाद फूटा हो और सब से अधिक प्रभावकारी करुण रस की कविताएँ ही होती हैं।

करुणा उर्दू कविता का प्रमुख रस है किंतु उर्दू काव्य इसी रस तक सीमित नही है। इसमे अन्य सवेदनाएँ भी प्रभावी रूप मे उभरी हैं। यह ठीक है कि उर्दू मे अभी तक शेक्सपियर जैसा सर्वव्यापी साहित्यकार नहीं हुआ जो प्रत्येक सवेदना का पूरे ढग से प्रस्फुटन करा सके। 'गालिब' और 'अनीस' जैसे महाकवि भी इस मामले मे शेक्सपियर से पीछे हैं। फिर भी इन दोनो ने काफी अधिक सवेदनाओ को उभारा है, जिनमे कई परस्पर-विरोधी भी है।

चकबस्त सवेदनाओं की विविधता मे 'गालिब' या 'अनीस' की बराबरी नही कर सके। लेकिन वे उनसे बहुत पीछे भी नही है क्योंकि उन्होंने विभिन्न प्रकार की सवेदनाओ को सरल स्वाभाविकता से निबाहा है। वे आरम्भ से हीं 'अनीस' से बहुत प्रभावित रहे। मेरे विचार मे अगर आज भी कोई कवि भावनाओं के चित्रण का हुनर सीखना चाहे तो उसे 'अनीस' का सहारा लेना चाहिए। चकबस्त 'आतिश' और 'गालिब' जैसे कवियों के भी प्रशसक थे। यह दोनो कवि भी बड़े आत्मविश्वास से विभिन्न सवेदनाओं का प्रकाशन करते थे।

चकबस्त के राष्ट्र तथा जाति की सेवा मे काव्य को समर्पित करने के बावजूद वे करुणा भाव को बड़े प्रभावी ढग से निभाते हैं। कारण स्पष्ट है। उनको

जगह कोई तुकबन्द मात्र होता तो करुणा को तिलांजलि दे देता क्योंकि यह तथाकथित रूप में अकर्मण्यता उपजाती है। किन्तु चकबस्त भावुक थे। छोटी-से-छोटी त्रासदी उन्हें द्रवित कर देती थी। इसी कारण उनकी कुल 45 कविताओं में से नेताओं तथा मित्रों की मृत्यु पर लिखे आठ मरसिये हैं और सामूहिक त्रासदियों पर लिखे दो शोक गीत। इनमें से एक कांग्रेस के विभाजन पर लिखा गया है और दूसरा कश्मीरी ब्राह्मणों की एक संस्था के विघटन पर।

चकबस्त का करुणात्मक काव्य अपने कलेवर ही में नहीं गुणवत्ता में भी प्रभावी है। यह बात कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगी। सन 1904 में अपने मित्र प्रतापकिशन गुर्टू की मृत्यु पर उन्होंने जो मरसिया लिखा, उसका एक बंद है

कुछ खबर है तुझको ऐ दिलदादए-ख्वाबे-फ़ना[1]
है गरे-बालीं[2] ये क्या हंगामए-महशर बरपा
नालाहाए-दर्द यह कैसे हैं यह मातम है क्या
चाक है किसका गरेबां कौन है सर धुन रहा
है तड़पता कौन दिल जीने से किसका सेर[3] है
बाल किसने लाश पर खोले हैं, क्या अंधेर है

नेताओं की मृत्यु पर लिखे गये मरसियों में भी चकबस्त ने राष्ट्रीय त्रासदी के अतिरिक्त व्यक्तिगत त्रासदी की भावनाएँ भी शामिल कर दी हैं। गोखले के मरसिए का एक बंद है

अजल[4] के दाम में आना है यूँ तो आलम को
मगर ये दिल नहीं तैयार तेरे मातम को
पहाड़ कहते हैं दुनिया में ऐसे ही गम को
मिटा के तुझको अजल ने मिटा दिया हमको
जनाज़ा हिन्द का दर से तिरे निकलता है
सुहाग कौम का तेरी चिता में जलता है

कश्मीरी यंगमैन एसोसिएशन के अंतिम अधिवेशन में उस संस्था के विघटन का मातम करते हुए चकबस्त ने जो नज़्म पढ़ी, वह इस प्रकार आरंभ होती है—

क्या कहें किससे कहें हम आज क्या कहने को हैं
आख़िरी अफ़सानए-शौक़े-वफ़ा[5] कहने को हैं
जिन उम्मीदों की लड़कपन में हुई थी इब्तिदा
आज उनकी इंतिहा का माजरा कहने को हैं

---

1 मृत्यु निद्रा के मारे, 2 सिरहाने, 3 ऊबा हुआ,
4. मौत, 5. प्रेमोत्साह की कहानी।

बेख़बर अब भी नहीं हम क़ौम के दुख दर्द से
पहले हिम्मत थी दवा की अब दुआ कहने को है
क्या कहें क्या दौरे-आख़िर में सितम देखा किए
बरहमी[1] बढ़ती गई महफ़िल की हम देखा किए

'रामायण का एक सीन' शीर्षक से उन्होंने जो नज्म लिखी है उसमें संवेदना का प्रस्फुटन बहुत ऊँचे स्तर का दिखाई देता है। इस दृष्टि से यह बड़े-से-बड़े करुणात्मक मरसिये से टक्कर ले सकती है। यह उस समय का वर्णन है जब वनवास पर जाने से पहले रामचन्द्रजी अपनी माता से विदा लेने जाते है। कौशल्याजी कहती है।

लेती किसी फ़क़ीर के घर में अगर जनम
होते न मेरी जान को सामान यह बहम
डसता न सांप बनके मुझे शौकतो-हशम[2]
तुम मेरे लाल थे मुझे किस सल्तनत से कम
ले जा के फूंक दे कोई इस तख़्तो-ताज को
जब तुम नहीं तो आग लगाऊँगी राज को

चकबस्त की गजलों की विशेषता उनकी दार्शनिकता और राष्ट्रप्रेम की भावना है। उनकी गजलो मे करुणा तत्त्व उतना नही आया है जितना उर्दू का औसत कवि अपनी गजलो मे लाया करता है। फिर भी उनकी गजलो के कई शेरो मे करुणा भाव खूब उभर कर आया है। कुछ उदाहरण दिये जाते है—

नाशाद हुए नाकाम हुए तक़दीर ही अपनी फूट गई
जिस शाख़ पे हमने हाथ धरा वह शाख़ वहीं से टूट गई

जगह थोड़ी-सी मिल जाए अगर गोरे-ग़रीबां[3] मे
दिले-नाशाद को छोटी सी इक तुरबत बनानी है

यूं न इंसान का बरगश्ता[4] मुक़द्दर हो जाए
मैं अगर फूल उठा लूं तो वो पत्थर हो जाए

ख़िलअत कफ़न का हम तो ज़माने से पा चुके
अब है अरूसे-मर्ग[5] तुम्हें इंतज़ार क्या

फैली हो जैसे गोरे-ग़रीबां में चांदनी
आलम ये है लहू में दिले-दाग़दार का

---

1. विघटन, 2 ऐश्वर्य, 3 परदेसियों का कब्रिस्तान, 4 फिरा हुआ, 5 मृत्यु की वधू।

मिरे मातमकदे[1] में रात का परदा ग़नीमत है
सियाही और बढ़ जाती है इस दाब की सहर होकर

प्रेरणादायक काव्य

जैसा पहले कहा जा चुका है चकबस्त करुणापरक कविता बड़ी कुशलता से करते हैं किंतु उनका काव्य करुणा तक सीमित नहीं है। वे उफनती हुई संवेदनाओं के कवि हैं। अपने आदर्श व्यक्तियों की प्रशंसा, शत्रु को ललकारने और अपने साथियों को कर्म के लिए उत्साहित करने के मामले में उनका कोई जवाब नहीं दिखाई देता। उनकी उत्साहवर्धक नज़्में उनकी मृत्यु के बाद एक पूरी पीढ़ी तक के लोगों को ज़बानी याद थीं। राष्ट्रप्रेम के विषय को उठाते समय हमने उनकी कुछ प्रेरणादायक नज़्मों का नमूना देख लिया है। आगे कुछ और उदाहरण दिये जा रहे हैं। उन्होंने एक नज़्म पण्डित मदन मोहन मालवीय तथा अन्य गणमान्य नेताओं की, जो हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए धन एकत्र कर रहे थे, प्रशंसा में कही है। उसका एक बन्द निम्नलिखित है—

जो अपने वास्ते माँगें ये वह फ़क़ीर नहीं
तमअ[2] में दौलते-दुनिया की यह असीर नहीं
अमीर दिल के हैं ज़ाहिर के यह अमीर नहीं
वो आदमी नहीं जो इनका दस्तगीर[3] नहीं
तमाम दौलते-ज़ाती लुटाए बैठे हैं
तुम्हारे वासते धूनी रमाए बैठे हैं

इसी कविता में उन्होंने निम्नलिखित बंद में पैग़म्बराना चेतावनी दी है—

ये क़हत[4] क्या है ये ताऊन[5] क्या है क्या है वबा[6]
तुम्हारी क़ौम पे नाज़िल हुआ है क़हरे-ख़ुदा
जो राहे-रास्त से होती है कोई क़ौम-जुदा
इसी तरह उसे मिलती है एक रोज़ सज़ा
इसी तरह से हवा क़ौम की बिगड़ती है
इसी तरह से ग़रीबों की आह पड़ती है

दक्षिणी अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों पर उन्होंने जो नज़्म 'फ़रियादे क़ौम' शीर्षक से लिखी है उसमें एक आपातकालीन चीत्कार का स्वर है ताकि उन कष्टभोगियों की सहायता के लिए प्रभावी कदम उठाए जायें। उदाहरण है :

कहाँ हैं मुल्क के सरताज क़ौम के सरदार
पुकारते हैं मदद के लिए दरो-दीवार

1. शोकगृह।
2. लालच, 3. सहायक, 4. दुर्भिक्ष, 5. प्लेग, 6. महामारी।

वतन की ख़ाक से पैदा हैं जोश के आसार
ज़मीन हिलती है उड़ता है ख़ून बन के गुबार
जगह से अपनी है चित्तौड़ की ज़मीं सरकी
लरज़ रही है कई दिन से क़ब्र अकबर की

सन् 1916 में उन्होंने 'आवाज़-ए-क़ौम' शीर्षक से एक कविता लिखी जिसमें स्वायत्त शासन (होम रूल) की प्राप्ति के राष्ट्रीय प्रण की घोषणा है। इसमें चकबस्त ने जो स्वर अपनाया है वह निम्नांकित अंश से स्पष्ट होगा—

ये जोशे-पाक ज़माना दबा नहीं सकता
रगों में ख़ूँ की हरारत मिटा नहीं सकता
ये आग वह है जो पानी बुझा नहीं सकता
दिलों में आ के ये अरमान जा नहीं सकता

जज़्बए-उल्फ़त सफ़ाए-क़ल्ब[1] आईने-अदब
ख़ुदनुमाई पर ये सब जौहर फ़िदा होने को हैं
है तलबगारों में गुल कुछ मर उठाया चाहिए
क़ौम के दरबार से ख़िलअत अता होने को हैं
आँसुओं से अपने जो सींचा किए बाग़े-वतन
बेवफ़ाई के उन्हें ख़िलअत अता होने को हैं
जिनको मंज़िल से ज़ियादा है हवा का रुख़ अज़ीज़
क़ौम के बेड़े के ऐसे नाख़ुदा होने को हैं

लार्ड कर्ज़न की निन्दा में कही हुई उनकी नज़्म का पहले उल्लेख हो चुका है। हमने उसका भर्त्सनामय स्वर भी देखा है। इसमें कुछ निम्नस्तरीय परिहास भी आ गया है। उसके उदाहरण के लिए उस नज़्म के तीन शेर दिए जा रहे हैं—

अब मुनासिब है यही कीजिए पिंजरा ख़ाली
हम भी ख़ुश आप भी ख़ुश दूर कहीं हो झंझट
तू जो जाने पे हो राज़ी तो तिरे सर की क़सम
कर के चंदा तुझे हम ले दें विलायत का टिकट
और जो तुझको नहीं मंज़ूर ये अहसा लेना
भेज दें हम तुझे बैरंग बनाकर पैकट

चकबस्त दूसरों का मज़ाक़ उड़ाने के साथ अपना भी मज़ाक़ उड़ाने की क्षमता रखते थे। वकालत के आरंभ काल में उन्होंने यह शेर लिखा था :

ख़्वाब में जो मलिकुल्मौत[2] मुक़ाबिल आया
दिले-नाशाद ये समझा कि मुअक्किल आया

जो अधिकतर उनके हृदय में दबी रहती थी कभी-कभी खुलकर बाहर आ जाती थी। वह बन्द यह है :

न हूँ शायर न वली हूं न हूँ एजाज़-बयां[1]
बज़्मे-क़ुदरत में हूं तसवीर की सूरत हैरां
दिल में इक रंग है होता है जो लफ़्ज़ों से अयां[2]
लय की मुहताज नहीं है मिरी फ़रियादो-फ़ुग़ां
शौक़े-शुहरत हवसे-गर्मिए-बाज़ार नहीं
दिल वो यूसुफ़ है जिसे फ़िक्रे-ख़रीदार नहीं

साधारणत. लोगों को ऐसी पंक्तियों में पूर्वीय नम्रता के उदाहरण दिखाई देते है। ऐसी बात नही कि चकबस्त मे यह नम्रता न हो। लेकिन मेरी नज़र मे उनका यह मिसरा खप गया है "बज़्मे-क़ुदरत में हूँ तसवीर की सूरत हैरां।" कवि हृदय स्वय को इसी रूप मे देखता है।

कवि के हृदयपटल पर प्रकृति अपनी छवि अंकित करे इसके लिए उसका हैरान यानी विचार-शून्य होना ज़रूरी है। दिल का पर्दा जब तक साफ़ न होगा उस पर कोई तसवीर कैसे खिचेगी। चकबस्त की कविताओं मे कभी-कभी उनकी इस आश्चर्यप्रद क्षमता के दर्शन होते हैं जिससे वे प्रकृति के चित्र अपने हृदय पर खीचते हैं, फिर उन्हे दूसरो के लिए नही स्वयं अपने लिए दुबारा (शब्दो मे) खीचते हैं। आसिफ़ुद्दौला के इमामबाड़े पर उन्होंने जो नज़्म लिखी है वह उच्चस्तर की कल्पनात्मक कविता है। वे पहले देखनेवालों को चांदनी रात मे इस इमारत को देखने के लिए आमन्त्रित करते है, फिर कहते हैं :

दरो-दीवार नज़र आते हैं क्या साफ़ो-शुफ़्क[3]
सिह्र[4] करती है निगाहों पे ज़ियाए-महताब[5]
यही होता है गुमां ख़ाक से मस[6] इसको नहीं
है संभाले हुए दामन में हवाए-शादाब
पर-ब-पर दीदए-हैरां को ये शक होता है
इस के सांचे में ज़मीं पर उतर आया है सहाब[7]
बेख़ुदी कहती है आया ये फ़ज़ा में क्योंकर
किसी उस्ताद मुसव्विर का है यह जल्वए-ख़्वाब
इक अजब मंज़रे-दिलगीर[8] नज़र आता है
मुझको इक आलमे-तसवीर नज़र आता है

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन रंगीन बनाकर पेश करने के

---

1. शब्दों का जादूगर, 2. स्पष्ट, 3. साफ़ और चमकते, 4. जादू, 5. चांदनी, 6. स्पर्श, 7. इन्द्रधनुषी दृश्य 8. करुण।

लिए नही है। फिर भी यह चित्र प्रकृति ही के हैं—ठीक वैसे ही जैसे वे आँखो के रास्ते आकर दिल पर खिंच गये हो। कुछ अन्य कविताओ, जैसे 1917 मे लिखी हुई 'मअज़िरत' शीर्षक वाली नज़्म मे भी हमे इसी प्रकार के वर्णन मिलते हैं। किंतु कभी-कभी कवि भावना के समार मे और गहराता चला जाता है। अपनी नज़्म 'मज़हबे-शायराना' मे चकबस्त समग्र विश्व से तादात्म्य स्थापित करते है और कहते है

कहते हैं जिसे अब्र[1] वो मैखाना है मेरा
जो फूल खिला बाग़ मे पैमाना है मेरा
कैफ़ीयते-गुलशन है मिरे नश्शे का आलम
कोयल की सदा[2] नारए-मस्ताना है मेरा
दरिया मिरा आईना है लहरें मिरे गेसू
और मौजे-नसीमे-सहरी[3] शाना[4] है मेरा
हर ज़र्रए-खाकी है मिरा मूनिसो-हमदम[5]
दुनिया जिसे कहते वो काशाना[6] है मेरा
मैं दोस्त भी अपना हूं उदू[7] भी हूं मैं अपना
अपना है कोई और न बेगाना है मेरा
आशिक भी हूँ माशूक़ भी यह तुर्फ़ा मज़ा है
दीवाना हूं मैं जिसका वो दीवाना है मेरा
कहते हैं खुदी किसको खुदा नाम है किसका
दुनिया मे प्रकट जल्वए-जानाना है मेरा
मिलता नहीं हर एक को वह नूर है मुझमें
जो साहिबे-बीनिश[8] है वो परवाना है मेरा
शायर का सुख़न कम नहीं मजनूं[9] की बड़ से
हर एक न समझेगा वो अफ़साना है मेरा

चकबस्त मे इस उच्चस्तर का आत्मबोध 1905 मे—जब वे 23 वर्ष ही के थे—पैदा हो गया था। यह उन्हे कहाँ से मिला? उर्दू काव्य-परम्परा मे तो इस प्रकार के गगनचुम्बी विचार बहुत ढूंढे से ही मिलेंगे। एक बहुत दूर की संभावना यह है कि इसका उद्गम 'ग़ालिब' का काव्य हो। 'ग़ालिब' के

1. बादल, 2. आवाज़।
3. सवेरे की हवा का झोंका, 4 कंघी, 5 मित्र, 6. महल, 7. शत्रु, 8. आँख वाला ज्योतिर्मय शरीर,

जो अधिकतर उनके हृदय में दबी रहती थी कभी-कभी खुलकर बाहर आ जाती थी। वह बन्द यह है :

> न हूँ शायर न वली हूँ न हूँ एजाज़-बयां[1]
> बज़्मे-क़ुदरत में हूँ तसवीर की सूरत हैरां
> दिल में इक रंग है होता है जो लफ़्ज़ों से अयां[2]
> लय की मुहताज नहीं है मिरी फ़रियादो-फ़ुग़ां
> > ज़ौक़े-शुहरत हवसे-गर्मिए-बाज़ार नहीं
> > दिल वो यूसुफ़ है जिसे फ़िक्रे-ख़रीदार नहीं

साधारणतः लोगों को ऐसी पंक्तियों में पूर्वीय नम्रता के उदाहरण दिखायी देते हैं। ऐसी बात नहीं कि चकबस्त में यह नम्रता न हो। लेकिन मेरी नज़र में उनका यह मिसरा खप गया है "बज़्मे-क़ुदरत में हूँ तसवीर की सूरत हैरां।" कवि हृदय स्वयं को इसी रूप में देखता है।

कवि के हृदयपटल पर प्रकृति अपनी छवि अंकित करे इसके लिए उसका हैरान यानी विचार-शून्य होना ज़रूरी है। दिल का पर्दा जब तक साफ़ न होगा उस पर कोई तसवीर कैसे खिंचेगी। चकबस्त की कविताओं में कभी-कभी उनकी इस आश्चर्यप्रद क्षमता के दर्शन होते हैं जिससे वे प्रकृति के चित्र अपने हृदय पर खींचते हैं, फिर उन्हें दूसरों के लिए नहीं स्वयं अपने लिए दुबारा (शब्दों में) खींचते हैं। आसिफ़ुद्दौला के इमामबाड़े पर उन्होंने जो नज़्म लिखी है वह उच्चस्तर की कल्पनात्मक कविता है। वे पहले देखनेवालों को चांदनी रात में इस इमारत को देखने के लिए आमन्त्रित करते हैं, फिर कहते हैं :

> दरो-दीवार नज़र आते हैं क्या साफ़ो-सुबुक[3]
> सिह्र[4] करती है निगाहों पे ज़ियाए-महताब[5]
> यही होता है गुमां ख़ाक से मस[6] इसको नहीं
> है संभाले हुए दामन में हवाए-शादाब
> यक-ब-यक दीदए-हैरां को ये शक होता है
> इस के सांचे में ज़मीं पर उतर आया है सहाब[7]
> बेख़ुदी कहती है साया ये फ़ज़ा में क्योंकर
> किसी उस्ताद मुसव्विर का है यह जल्वए-ख़्वाब
> > इक अजब मंज़रे-दिलगीर[8] नज़र आता
> > मुझको इक आलमे-तसवीर नज़र आता

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन रंगीन बनाकर

---

1. शब्दों का जादूगर, 2. स्पष्ट, 3. साफ़ और हल्के, 4. जादू, 5.
7. [illegible] 8. [illegible]।

शेरों में इस तरह के कुछ इशारे मिलते हैं, लेकिन वे उपर्युक्त क्यों की ...
जिनसे मसूर हल्लाज और सरमद जैसे संतों की वाणियाँ याद आयें—
नहीं हैं। चकबस्त ने भी अपनी परवर्ती कविताओं में इस तत्व का विका...
किया। इसलिए हम इसका उद्गम खोजने में असमर्थ हैं। उद्गम ...
आभास हमें उनकी नज्म 'जल्वए-मअरिफत' या वेद दर्शन में मिलता है
बस्त ने यह नज्म अपने एक मित्र के आग्रह पर एक धर्मग्रंथों के पुस्त...
पत्थर पर खुदवा कर लगवाने के लिए लिखी थी। इसमें वे कहते हैं,

जिससे इंसान में है जोशे-जवानी पैदा
उसी जौहर से है मौजों में रवानी पैदा
रंग गुलशन में फजा दामने-कुहसार[1] में है
खूं रगे-गुल में है निश्तर की खलिश खार में है
तमकनत[2] हुस्न में है जोश है दीवाने में
रोशनी शम्अ में है सोज है परवाने में
रंगों-बू हो के समाया वही गुलजारों में
अब्र[2] बनकर वही बरसा किया कुहसारों में

स्पष्टतः चकबस्त ने काफी उम्र में वेदांत के, जो ऐसे विचा...
है, सार को हृदयगम कर लिया था। जिस आत्मविश्वास से यह ...
गई है उससे स्पष्ट है कि यह सुनी-सुनायी बातों की पुनरावृत्ति ...
फिर क्या कारण हो सकता है कि उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण काव्यत...
कर दी? एक ही बात संभव है कि उन्होंने पक्का इरादा कर ...
राष्ट्रप्रेम और समाज सुधार की वेदी पर हर चीज बलिदान ...
बलिदान उचित था या नहीं, इस पर अंतिम निर्णय कौन दे सकता ...

जल्दबाजी की भूलें

चकबस्त सारी जिंदगी लखनऊ में रहे और लखनवी ...
पूरी तरह आत्मसात कर ...
जागरूक रहते थे और ...
में काव्य या गद्य ...
चकबस्त ने ...
की कविता ...
विचार में दो ...

1. पहाड़ का
2. बादल, मान

सुनहरे चुटीलो से चोटियाँ बाँधती थी। अब दोनो दृश्यो को मिलाइये और चकबस्त के बिम्बविधान का कमाल देखिए। गगा प्रसाद वर्मा की मृत्यु पर लिखे गये मरसिये का एक शेर है :

चाँदनी रात मे जिस वक़्त हवा आती है
कौम के दिल के धड़कने की सदा आती है

जहाँ तक मैं जानता हूँ उर्दू मे ऐसा कोमल बिम्ब चकबस्त से पहले किसी ने प्रयुक्त नही किया था।

एक और उदाहरण देखिए। गोखले के मरसिए मे वह कहते हैं

खुदा के हुक्म से जब आबो-गिल[1] बना तेरा
किसी शहीद की मिट्टी से दिल बना तेरा

गोपाल कृष्ण गोखले जैसे देशभक्त के बेचैन, आत्मोत्सर्गी, साहसी और सत्यनिष्ठावान हृदय का इससे सुदर और उपयुक्त ढग से क्या वर्णन होगा ?

या फिर एक विवाह का—जिसमे चकबस्त शामिल नही हो सके थे—आह्लादकारी वर्णन करनेवाली एक नज़्म का यह शेर देखिए

फिर रहा है निगहे-शौक़ मे शादी का समा
फूल तारो के लुटाते हुए आई है रात

इस बात पर ध्यान जाना स्वाभाविक ही है कि यहाँ सितारो को चाँदी के फूलो से उपमा दी गई है, जो बिल्कुल अनूठी है। इस उपमा का इस अवसर के लिए औचित्य और भी स्पष्ट हो जाएगा अगर हम यह याद रखे कि उत्तर भारत मे परम्परानुसार होनेवाले विवाहो मे जब वधू के घर से वर के साथ वधू को लेकर बारात चलती है तो बरात का मुखिया चाँदी या गिलट के सिक्के उछालता है ताकि उन्हे मडक पर घूमने और खेलनेवाले लडके लूट लें।

कभी-कभी अभिव्यक्ति की सरलता कृत्रिम बिम्बो से अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। ऐसे वर्णन की क्षमता बहुत ही परिपक्व कवियो मे पैदा हो पाती है। इस सारल्य को उर्दू मे सहले-मुमतनिअ (अति कठिन सारल्य) कहते हैं। भावनाओ की सच्चाई और काव्य-कौशल द्वारा चकबस्त ने ऐसी क्षमता पैदा कर ली थी। अपने काव्य-सग्रह को स्वर्गीय प बिशुन नारायण दर को समर्पित करने के लिए लिखी हुई कविता मे वे अत मे कहते है :

जिसको दुनिया की खबर हो ये वो मामूर नहीं
तेरे मातम की नुमायश मुझे मजूर नहीं

इसी नज़्म मे एक मिसरा है :

दिल के मदिर का उजाला है ये तसवीरे-कमाल

---

1. पानी और मिट्टी वाला शरीर।

सुनहरे मुर्दालों में मोतियाँ बाँधती थी। अब दोनों दृश्यों को मिलाइये और चकबस्त के बिम्बविधान का कमाल देखिए। गंगा प्रसाद वर्मा की मृत्यु पर लिखे गये मरसिये का एक शेर है

चाँदनी रात में जिस वक्त हवा आती है
क़ौम के दिल के धड़कने की सदा आती है

जहाँ तक मैं जानता हूँ उर्दू में ऐसा कोमल बिम्ब चकबस्त से पहले किसी ने प्रयुक्त नहीं किया था।

एक और उदाहरण देखिए। गोखले के मरसिए में वह कहते हैं

ख़ुदा के हुक्म से जब आबो-गिल[1] बना तेरा
किसी शहीद की मिट्टी से दिल बना तेरा

गोपाल कृष्ण गोखले जैसे देशभक्त के बेचैन, आत्मोत्सर्गी, साहसी और सत्यनिष्ठावान हृदय का इससे सुंदर और उपयुक्त ढंग से क्या वर्णन होगा ?

या फिर एक ब्याह का—जिसमें चकबस्त शामिल नहीं हो सके थे—आह्लादकारी वर्णन करनेवाली एक नज़्म का यह शेर देखिए

फिर रहा है निगहे-शौक़ में शादी का समां
फूल तारों के लुटाते हुए आई है रात

इस बात पर ध्यान जाना स्वाभाविक ही है कि यहाँ सितारों की चाँदी के फूलों से उपमा दी गई है, जो बिल्कुल अनूठी है। इस उपमा का इस अवसर के लिए औचित्य और भी स्पष्ट हो जाएगा अगर हम यह याद रखें कि उत्तर भारत में परम्परानुसार होनेवाले विवाहों में जब वधू के घर से वर के साथ वधू को लेकर बारात चलती है तो बरात का मुखिया चाँदी या गिलट के सिक्के उछालता है ताकि उन्हें सड़क पर घूमने और खेलनेवाले लड़के लूट लें।

कभी-कभी अभिव्यक्ति की सरलता कृत्रिम बिम्बों से अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। ऐसे वर्णन की क्षमता बहुत ही परिपक्व कवियों में पैदा हो पाती है। इस सारल्य को उर्दू में सह्ले-मुमतनिअ (अति कठिन सारल्य) कहते भावनाओं की सच्चाई और काव्य-कौशल द्वारा चकबस्त ने ऐसी क्षमता पैदा कर ली थी। अपने काव्य-संग्रह को स्वर्गीय प. बिशुन नारायण दर को समर्पित करने के लिए लिखी हुई कविता में वे अंत में कहते हैं:

जिसको दुनिया की ख़बर हो ये वो नासूर नहीं
तेरे मातम की नुमायश मुझे मंज़ूर नहीं

इसी नज़्म में एक मिसरा है:

दिल के मंदिर का उजाला है ये तसवीरे-कमाल

---

1. पानी और मिट्टी यानी शरीर।

रूपक

एक और अनूठा बिम्ब 'आवाज-ए-कौम' शीर्षक वाली नज़्म में मिलता है जो स्वायत्त शासन होम रूल की माँग के समर्थन में लिखी गई थी। यह कहने के बाद कि हमारे विरोधी हम पर अनैक्य का आरोप लगाते हैं और कहते हैं कि भारत की दशा इंद्रधनुष की तरह है, चकबस्त कहते हैं :

जो होम रूल से यह बज़्मे-शौक़ पैदा हो
तमाम रंग मिलें एक रंग पैदा हो

मेरी समझ में उर्दू में यह रूपक लाना तब तक संभव नहीं था जब तक कि कवियों ने यह नहीं जान लिया कि स्कूलों में विज्ञान की प्रयोगशालाओं में छेदित घनक्षेत्र (प्रिज़्म) के एक पहलू से निकलनेवाले सात रंगों से मिलकर ही सूर्य का प्रकाश बनता है।

रूपकों के सिलसिले में हमें यह भी दिखायी देता है कि चकबस्त ने किसी भावना विशेष के प्रदर्शन के लिए ऐसी शैली अपनाई है जिसमें रूपकों की एक शृंखला बन जाती है। 'एक जवामर्द दोस्त' शीर्षकवाली नज़्म में, जो उन्होंने अपने एक मित्र की मृत्यु पर लिखी थी, उन्होंने मित्र की विधवा की दशा एक बंद में, रूपक शृंखला के माध्यम से दर्शायी है.

ख्वाब में सुनता हो जैसे नग़मए-शीरीं[1] बशर
जिससे तारे[2] दिल पे हो, कैफीयते-जादू असर
यह नवा-ए-रूहपरवर[3] बंद हो जाए अगर
आँख खुलते ही सियाही शब की हो पेशे-नज़र
इक अजब आलम हो तब उसके दिले-बेताब का
जागने पर उस घड़ी उल्टा गुमाँ हो ख्वाब का

इसी प्रकार महादेव गोविंद रानाडे की मौत पर लिखे हुए मरसिये में इस राष्ट्रीयता त्रासदी का वर्णन करने के लिए उन्होंने दो रूपक शृंखलाएँ प्रयुक्त की हैं। पहली में दिखाया गया है कि अँधेरी रात में जंगल में भटकते हुए काफिले को आशा दिलानेवाली ज्योति अचानक बुझ जाती है। दूसरी में है तूफान में फँसे हुए जहाज के कप्तान की बिजली गिरने से मृत्यु। पहली रूपक शृंखला दो और दूसरी तीन बंदों में समायी है। मालूम होता है कि बाद वाली कविताओं में चकबस्त ने यह शैली छोड़ दी। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि यह अच्छी शैली थी यद्यपि इसमें प्रभाव का महत्व कम हो जाता था।

मुझे सबसे आकर्षक रूपक-शृंखला उनकी नज़्म 'जल्वा-ए-सुबह' के एक बंद में लगी है जिसमें प्रातःकाल के दृश्य का मिलान उस दृश्य से किया गया है जो

---

1. मीठी तान, 2. [illegible], 3. आत्मा को पुष्ट करनेवाली ध्वनि.

हज़रते-मूसा ने तूर पर भगवान की ज्योति देखी थी। वह यह:

था बैमे-नज़र बारिश-ए-ऐमन का तमाशा
हर शाख़ पे शाख़े-शजरे-तूर का नक़्शा
था आतिशे-गुल से असरे-बर्क़-तजल्ला[1]
मदहोश थे मुर्ग़ाने-सहर[2] सूरते-मूसा
शाने-यदे-बैज़ा[3] थी हर एक शाख़ शजर में
एजाज़ का[4] गुल था कफ़े-गुलचीने सहर में[5]

चकबस्त उपमाओं और रूपकों के चुनाव के मामले में बड़े जागरूक हैं। उनकी उपमाएँ और रूपक वर्ण्य विषय से पूरा मेल खाते हैं। इस होशियारी के कारण उनके कथन प्रभावात्मक और स्वाभाविक हो जाते हैं। उपर्युक्त ठेठ इस्लामी किस्सों की तुलना उनकी नज़्म 'गाय' की उपमाओं से कीजिये:

रंग काला हो कि उजला यही कहती है नज़र
बिन्द्राबन की वो है शाम ये मथुरा की सहर[6]

ऐसा नहीं है कि केवल करुणात्मक या प्रेरक बातों के प्रसंग में ही चकबस्त के चित्र सर्वांगपूर्ण हों। उनके सौंदर्य बोध के कारण उनके वर्णन हर जगह चलचित्र जैसे बन जाते हैं। उनकी श्री कृष्ण विषयक नज़्म के दो शेर हैं:

शोख़ो-तर्रार हसीं छोकरियाँ गोकुल की
चली आती हैं सुराही लिए जमुनाजल की
दिल जवानी की उमंगों पे मचल जाता है
खिलखिला पड़ती हैं जब पाँव फिसल जाता है

मैं पाठकों का ध्यान उस महान और प्राणवान तथा ध्वनि समन्वयकारी शब्दसमूह की ओर, जो भारतीय सैनिकों की विदाई सम्बन्धी उनकी कविता के पहले बंद में दिखायी देता है, दिलाकर यह विषय समाप्त करता हूँ। उस बंद के मिसरे हैं:

रन में बाँधे हुए शमशीरो-कफ़न जाते हैं
तेगज़न[7] बर्क़-फ़गन[8] क़िला-शिकन[9] जाते हैं

इस बात में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए कि अगर कोई चकबस्त का काव्य संदेश स्वीकार न करे तो भी उनके काव्य का पूरा आनंद ले सकता है। वैसे यह शर्त बात कहने के लिए ही है क्योंकि उनकी भावनिष्ठा भी संक्रामक है और कोई पाठक उनके संदेश से अछूता नहीं रह सकता।

---

1 ईश्वरीय ज्योति की बिजली का प्रभाव, 2 सुबह गानेवाली चिड़ियाँ, 3 (मूसा के) सफ़ेद हाथ की भाँति, 4. ईश्वरीय चमत्कार, 5 प्रात रूपी माली की हथेली। 6 सवेरा, 7. तलवार चलानेवाले, 8. बिजली गिरानेवाले 9 किला तोड़नेवाले।

गद्य लेखन

यद्यपि चकबस्त का गद्य लेखक के रूप में बहुत उल्लेख नहीं हुआ है यद्यपि मेरे विचार से इनका महत्त्व उनकी कविताओं से कम नहीं है। उनकी लेखनी उर्दू में गद्य में भी उतने ही प्रवाह से चलती थी जितनी पद्य में। अपने लेखन के आरम्भ काल से ही वे कश्मीरी पंडितों की मासिक पत्रिका 'कश्मीर दर्पन' के लिए लेख लिखते रहे। कुछ समय बाद उन्होंने 'जमाना', 'अदीब' और 'उर्दू-ए-मुअल्ला' जैसी पत्रिकाओं में लिखना शुरू किया। उन्होंने हास्य पत्रिका 'अवध पंच' के लिए भी लिखा। 'अवध पंच' के बंद होने पर उन्होंने उस पत्रिका के स्थान पर 'गुलदस्ता-ए-अवध पंच' के लिए उक्त पत्रिका में निकलनेवाले पर कई लेख लिखे। लेकिन उनके गद्य लेखन का अधिकांश उस पत्रिका में है जो उन्होंने प्रकाशित की थी। यह पत्रिका 'सुबहे-उम्मीद' थी जो अक्तूबर 1918 में आरम्भ हुई और चार बरस चली। उनके लेखन का अधिकांश उस पत्रिका में होने का कारण यह था कि उस समय की राजनीतिक पत्रिकाओं की सामग्री अधिकतर सम्पादक को स्वयं लिखकर देनी पड़ती थी।

उनकी गद्य रचनाओं के कथ्यों पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं। इस जगह पर उनके गद्य लेखन की शैली के बारे में कुछ कहा जा सकता है।

उर्दू में चकबस्त के जमाने की तो बात ही क्या है इस समय तक गद्य से पुराने जमाने के अलंकरण को पूर्णत: त्यागा नहीं जा सका है। यह ठीक है कि आज के गद्य में पुराने जमाने की तरह अत्यानुप्रासयुक्त टुकड़े और वर्ण्य विषय से सम्बद्ध शब्दों की अनावश्यक भरमार नहीं मिलती। किंतु आज भी गंभीर आलोचना तक में हमें उपमाओं और रूपकों का ऐसा बाहुल्य मिलता है जिससे कभी-कभी अर्थ सम्बन्धी उलझन पैदा हो जाती हैं। बल्कि मुझे संदेह है कि कभी-कभी यह आलंकारिक शैली इसलिए अपनायी जाती है कि आलोचक आलोच्य विषय पर अपनी पकड़ की कमज़ोरी छुपाना चाहता है। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी गद्य-लेखक हैं जो शैली को इतना सरल बना देते हैं कि वह लगभग सपाट और उबानेवाली हो जाती है।

चकबस्त के जमाने में उर्दू गद्य ने साहित्यिक माध्यम के रूप में स्थान ग्रहण करना आरंभ ही किया था। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक गद्य में या तो हमें दास्तानें (पुराने जमाने की परियों, जिन्नों, चमत्कारी योगियों, जादूगरों सजीले राजकुमारों और सुंदरी राजकुमारियों की लम्बी कहानियाँ) मिलती थीं या पुस्तकों की तकरीजें (भूमिकाएँ) या पत्र। इन सबकी लेखन शैली बड़ी भारी भरकम होती थी। इनमें वही अन्त्यानुप्रासयुक्त (मुकफ़्फ़ा) वाक्यांश, भारी-भारी अपरिचित शब्दों का प्रयोग और लम्बा-चौड़ा बिम्ब विधान, जिसका वर्ण्य विषय से कोई सीधा सम्बन्ध न था, नजर आता है। जो पत्र लिखे जाते

थे उनमें कथनीय तथ्य को रूपकों और उपमाओं के ढेर में दबा दिया जाता था और इसके अलावा आरंभ और अंत में निरर्थक शब्दजाल से भरे हुए अल्काब आदाब (शिष्ट उद्बोधन) के वाक्यों के जंगल खड़े कर दिये जाते थे। इस शब्दजाल का उद्देश्य केवल यह जताना होता था कि पत्रलेखक का अरबी-फारसी का शब्द-भंडार विशाल है। पुस्तकों की भूमिकाओं में भी यही शब्द-जाल होता था और उनमें यह नहीं मालूम होता था कि किताब में क्या है ?

पत्र लेखन में 'गालिब' ने एक स्वच्छन्द, स्वाभाविक और यथार्थमूलक शैली अपनायी किन्तु वास्तव में यथार्थवादी और आकर्षक गद्य शैली विकसित करने का श्रेय सर सैयद अहमद खां और उनके सहयोगियों को मिलना चाहिए। वैसे इन सहयोगियों में मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' जैसे लोग भी थे जिन्होंने एक नये ढंग की अलंकृत शैली अपनायी। इस शैली में शब्द दास्तानों की अपेक्षा सरल होते थे किंतु उपमाओं एवं रूपकों आदि का अत्यधिक प्रयोग करके गद्य को इतना काव्यमय करने का प्रयत्न किया जाता था कि उसे समझने में अक्सर मन पर बोझ पड़ने लगता था। किंतु इस लेखक दल के अन्य सदस्यों—सर सैयद, नज़ीर अहमद, ज़का उल्लाह, 'हाली' आदि ने गंभीरता के साथ उचित अनुपात में अलंकरण युक्त ऐसी शैली आरंभ की, जिसे आज भी उर्दू गद्य की आदर्श शैली माना जाता है।

लखनवी शैली

उक्त लेखकों से अलग होकर लखनऊ में एक ऐसी गद्य-शैली विकसित हुई जो 'हाली' की शैली से अधिक अलंकृत और भारी थी किंतु प्राचीन शैली से कहीं अधिक बोधगम्य थी। इस शैली के सर्वप्रमुख लेखक पं. रतननाथ 'सरशार' थे जिनकी अमर कृति 'फसाना-ए-आज़ाद' की लोकप्रियता मुख्यतः उनकी लेखन शैली पर आधारित थी। इसमें 'हाली' की शैली की अपेक्षा अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग अधिक था किंतु यह इतनी जीवन्त और प्रवाहमय थी कि अपेक्षाकृत कम शिक्षित लोगों का भी मन मोह लेती थी।

'सरशार' की सृजनात्मक-प्रतिभा से चकबस्त बहुत प्रभावित थे। फिर भी, आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने 'फसाना-ए-आज़ाद' की लेखकीय शैली का बहुत कम प्रयोग किया है। साथ ही वे मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' की शैली से भी प्रभावित थे और कई स्थानों पर उनके गद्य में इस काव्यमयी गद्य शैली की झलक मिलती है। हिंदी के पाठकों के लिए उर्दू की शैलियों को समझने में कुछ मुश्किल तो होगी किंतु ध्यान देने पर ये शैलियां समझ में आ जायेंगी।

'अवध पंच' के 27 अगस्त 1904 के अंक में एक लेख में [illegible] ने

'हाली' द्वारा 'गुलजार-ए-नसीम' पर की हुई आपत्तियों का मजाक उड़ाया है। इसके लिए उन्होंने कुछ हद तक 'सरशार' की हास्यात्मक शैली अपनाई है। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस तरह है :

"एक रोज गुलजारे-नसीम की सैर मे मह्व[1] था कि हवाए-सर्द के दो तीन झोंके आये। मौसमे-बहार ने ऐसा मस्त किया कि नींद आ गयी। मगर वाह रे मै ! नींद क्या आई कि नसीब जागे। आलमे-ख्वाब में वह समां देखा कि आँखें खुल गईं। क्या देखता हूँ सुब्ह का सुहाना वक्त है और मेरा गुजर एक बागे-मीनू-सवाद[2] मे है जो नई दुल्हन की तरह आरास्ता[3] है। इस बाग के एक-गोशे मे दो तीन कुर्सियाँ रखी हुई हैं मगर खाली। एक सन्नाटे का आलम तारी है। फ़कत एक बुलबुले-हजार दास्ता शाखे-गुल पर बैठा चहक रहा है।"

इतिहास के विषय पर लिखे एक लेख मे (जो रिसाला-ए-तहज़ीब नामक पत्रिका मे छपा था और जिसे बाद मे चकबस्त के निबंध संग्रह मज़ामीने चकबस्त में शामिल कर दिया गया) उन्होंने मुहम्मद हुसैन 'आजाद' की अलंकृत शैली अपनाई है। इस लेख का एक अंश दिया जाता है :

"क़िस्सा मुख्तसर आलमे-तारीख[4] की सैर भी अजब रूहानी सुरूर का सरमाया बहम पहुँचाती है और आईनए-अक़्ल को जिला[5] देती है। इस आलम में क़दम रखते ही तज्जुबे का आफताब नूर-अफशां नजर आता है जिससे दिल की आँखें रोशन होती हैं। इस आलम मे तहजीबो-तरक्की की जबरदस्त शाहराह नजर आती है जिसका एक किनारा अज़ल[6] है दूसरा अबद[7], जिसकी मंजिल पर फ़ैज़[8] के चश्मे जारी हैं। कहीं वह लोग खानकाहों[9] मे बैठे हुए नजर आते हैं जिन्होंने मजहब और फलसफे की तहकीक मे अपनी उम्र सर्फ[10] कर दी है और शम्ए-नूरानी[11] से ऐसे चिराग रोशन किए हैं जिन्हें हवाए-मुखालिफ के झोंके बुझा नहीं सकते और जिनकी रोशनी मे अब तक बहुत से गुमराह मंजिले-मकसूद तक पहुँच जाते हैं। कहीं वह बज्मे-जादू आरास्ता नजर आती है जिसमें बड़े-बड़े मोजिज-निगारों[12], नस्सारों[13], और शायरों का मजमा है, गुफ्तगू[14] का गुलदस्ता महक रहा है। कहीं उन शौकत-हैबत[15] जंगजू-मनिश[16] नौजवानों की पुर-रोब सूरतें दिखाई देती हैं जिनके चेहरों से शुजाअत[17]

---

1. मस्त, 2. स्वर्गीय उद्यान, 3. सजा सजाया। 4. इतिहास संसार, 5. सफाई, 6. [illegible], 7. [illegible], 8 [illegible], 9. [illegible], 10 [illegible] 11. [illegible] 12. [illegible] 13 [illegible], 14. [illegible], 15 [illegible], 16. [illegible], 17. [illegible]

का नूर बरस रहा है और जिनकी तलवार के पानी से अब तक मुख्तलिफ कौमों के एजाजो-वकार[1] का चमन हरा हो रहा है।"

अदालती बहस का ढंग

चकबस्त के अधिकतर गद्य लेखन की शैली लगभग सर सैयद अहमद खाँ जैसी थी। मेरे विचार से चकबस्त ने यह शैली किसी गद्य लेखक के नमूने पर नहीं बनायी। यह उनमें स्वाभाविक और सहज रूप से आ गयी। इसका कारण यह है कि बचपन ही से वे बिशुन नारायण दर जैसे चोटी के वकीलों की अदालती बहस की शैली से बहुत प्रभावित थे। बाद में वे स्वयं वकील हो गये और उन्होंने अदालतों में मुकदमों की बहस करने और पत्रिकाओं में लेख लिखने के लिये एक ही शैली अपनायी।

अदालतों में बहस करते समय वकील को शत प्रतिशत तर्कपूर्ण होना पड़ता है और तथ्यों के तारतम्य का ध्यान रखना पड़ता है। इसका कारण यह है कि उसे न्यायाधीशों की तर्कबुद्धि से सामंजस्य करना होता है। इसके साथ ही उसे कुछ कवित्वपूर्ण और अलंकृत भाषा का भी प्रयोग करना पड़ता है ताकि अपने मुअक्किलों तथा अन्य उपस्थित जनों को प्रभावित कर सके। सर सैयद और उनके साथियों के सामने भी यही स्थिति थी—उन्हें जिस अदालत के सामने बहस करनी थी वह शिक्षित मुस्लिम समाज था। चकबस्त की गद्यशैलियों के उदाहरण पूरे करने के लिए यहाँ उनकी पत्रिका 'सुबहे-उम्मीद' (जनवरी-फरवरी 1920 के अंक) में लिखे हुए एक लेख से एक अंश दिया जा रहा है—

"अमृतसर के इजलासे-कांग्रेस का रंग देखते हुए अक्सर दर्दमंद दिलों में यह खयाल गुजरता है कि इस अजीमुश्शान कौमी जमाअत का अंजाम क्या होना है? कानूने-इस्लाह[2] और पयामे-शाही की इशाअत[3] के बाद भी तजवीजों[4] और तकरीरों का जो आलम रहा उससे मालूम होता है कि कांग्रेस की किश्ती में मौजूदा नाखुदा[5] अपना फर्ज होशियारी और काबिलियत से अदा नहीं कर रहे हैं और गोशए-आम[6] की परस्तिश को अपनी पोलिटिकल ज़िंदगी का मेयार समझते हैं। कांग्रेस के दरबार में वकार[7] कायम रखने का बेहतरीन जरिया यही रह गया है कि एतदालपसंदी[8] और मुदब्बिराना[9] मतानत[10] को खैरबाद कह कर महज़ चर्बज़बानी[11] और शोरिश-पसंदी से काम लिया जाए। बिला लिहाज इस अम्र[12] के कि स्याह बेरमपोशी की बाजमी की मजवीज मुनासिब हो या

1 [illegible]।

2. सुधार अधिनियम, 3. प्रकाशन, 4. प्रस्तावों, 5. मल्लाह, 6. जनसाधारण का क्षेत्र, 7. गौरव, 8. उदारवादिता, 9. बुद्धिमत्तापूर्ण, 10. गंभीरता, 11. [illegible], 12. [illegible]

नही, मिस्टर सत्यमूर्ति ने जो तकरीर इस तजवीज की ताईद मे की उससे मालूम होता था कि वह हिंदुस्तान की क़ौमी पार्लियामेंट को बाजारी मजमे से जियादा काबिले-अदब नही समझते है। पोलिटिकल तरकिबात और तश्बुह-ओ-ईसारे-नफ़स[1] टकसाल बाहर हैं।"

चकबस्त ने हास्यात्मक गद्य भी लिखा है और ऐसे लेखन मे दो शैलियाँ अपनायी है। जो लेख उनके नाम से छपे है उनमे उत्फुल्लता और जीवन्तता है किंतु मर्यादा के अदर हैं। कहीं-कही एकआध तेज़ फ़िक़रा भी निकल जाता है लेकिन ऐसे लेखन के अधिकाश भाग को नर्म-सी मुस्कुराहट के साथ पढ़ा जा सकता है। किंतु जिन लेखनों में उन्होंने अपना नाम नही दिया—खास तौर पर उन लेखनो मे जो 'अवध पंच' में प्रकाशित हुए हैं—उन्होंने ऐसा स्वर अपनाया है जो कोई गभीर प्रवृत्ति का व्यक्ति नही अपना सकता। उनके मज़ाक़ बहुत तेज हैं और कभी-कभी भदेस की सीमा को छू जाते है। वे इनके सिलसिले मे अपने बचाव मे सिर्फ यह कह सकते है कि उन्होने यह सब उस समय लिखा जब उनकी उम्र सिर्फ पच्चीस साल की थी।

चकबस्त की लिखी हुई। प्रत्येक पक्ति मे उलझाव का अभाव तथा स्पष्टता मिलती है। उनकी साधारण शैली—जोरदार दलीलो की शैली—के लिए तो यह बातें ज़रूरी ही हैं, उनके अलकृत लेखनो तक में एक भी वाक्यांश ऐसा नही है जिसका अर्थ पाठक के सामने तुरन्त ही स्पष्ट न हो जाए।

नाटक

चकबस्त नाटक लेखन के क्षेत्र में भी आए और उन्होंने 'कमला' नामक एक बहुत ही लम्बा नाटक लिखा। यह पूरे नाटक (फुल लेंग्थ प्ले) से भी बड़ा है और इसे दैत्याकार नाटक कहा जा सकता है। यह 120 से अधिक पृष्ठों मे फैला है और इसका मचन करने मे कम-से-कम पाँच घटे लगेंगे। इसे सबसे पहले उनके पत्रकार और साहित्यकार मित्र बिशन प्रसाद कौल ने 1915 मे प्रकाशित किया था लेकिन इसे लोग जल्द ही भूल गए। सन् 1971 मे इसे डा. अतिया निशात ने नई भूमिका के साथ इलाहाबाद से प्रकाशित किया। अब फिर यह अप्राप्य हो गया है।

सभवत: चकबस्त ने स्वय अपनी इस कृति को अधिक महत्त्व नहीं दिया। नाटक लेखन के लिए चाहे अभिनेता होना जरूरी शर्त न हो पर थियेटर का नियमित दर्शक होना तो जरूरी है ही। चकबस्त घर से देर तक [illegible] थे के 'थियेटर' देखने की बात सोच भी नहीं सकते थे क्योंकि उस समय

शिक्षित भद्र पुरुष 'भद्दे' प्रेमदृश्यों को देखना अपने गौरव के विरुद्ध समझते थे। चकबस्त के नाटक लेखन की सम्भवतः एक ही प्रेरणा थी, वह यह कि अंग्रेजी में नाटक लेखन उच्च साहित्य सर्जना का एक अंग समझा जाता था।

इसके अलावा हमें और कोई उद्देश्य इस नाटक का दिखायी नहीं देता। चकबस्त समाज-सुधार के बहुत बड़े समर्थक थे लेकिन इस नाटक में किसी स्पष्ट समाज-सुधार की ओर इंगित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त मुझे इस बात में भी बहुत संदेह है कि उनकी ठेठ मध्यवर्गीय मनोवृत्ति नाटक को समाज सुधार के माध्यम के रूप में स्वीकार भी कर सकती थी या नहीं। नाटक उस समय भी जनसाधारण के मनोरंजन का साधन था और आज भी है और चकबस्त के समय में जनसाधारण आज से अधिक अशिक्षित थे।

कुछ भी हो, यह नाटक असफल रहा। चकबस्त की यह एकमात्र असफल कृति है। इसका सबसे बड़ा दोष इसकी लम्बाई है। फिर इसका कथानक भी उलझा और दिशाहीन है। यह एक अति धनी किंतु अपढ़, क्रोधी और पुरान-पंथी जमींदार की बेटी की कहानी है। उसका भाई इंगलैंड से पढ़कर आया है और किसी भारतीय बात को नहीं सह सकता। कमला की बहन विमला का पति महाधूर्त है और एक लफंगे से कमला की शादी कराना चाहता है क्योंकि लफंगे से उसने वादा लिया है कि शादी के बाद उसे आधा दहेज दे देगा। निजी हितों का यह टकराव कई उलझी हुई परिस्थितियाँ पैदा करता है जिनके परिणामस्वरूप कमला घर से निकाल दी जाती है और बाद में आत्महत्या कर लेती है। उसका बहनोई भी सर्पदंश से मर जाता है।

उलझे, पेचीदे और उद्देश्यहीन कथानक के अलावा नाटक में और भी दोष है। चरित्र-चित्रण ठस होते हुए भी स्वाभाविक है किंतु कथोपकथन ढीला-ढाला और अस्वाभाविक है। कमला के इंगलैंड से लौटे हुए भाई से कहलवाया गया शब्द कहीं और सुनने को नहीं मिलेगा। यह देखकर भी आश्चर्य होता है कि इस नाटक में चकबस्त ने विदेशी शिक्षा का ऐसा मजाक उड़ाया है जब कि जीवन के आरंभकाल में वे बिशन नारायण दर का पक्ष लेकर अपनी जाति के पुरातनवादियों के विरुद्ध कमर कसकर खड़े हो गए थे क्योंकि उन लोगों ने दर साहिब की इंगलैंड यात्रा के कारण उनके सामाजिक बहिष्कार का प्रस्ताव किया था। नाटक के कथोपकथन में कसाव बिल्कुल नहीं है।

5

उपसंहार

साधारणतः आलोचकों ने [illegible] के राष्ट्रप्रेम और साम्प्रदायिक ऐक्य का कवि माना है। इस देश भक्ति के उनकी [illegible] में प्रमुख स्वर यही है। लेकिन [illegible] का मूल्यांकन इन्हीं तक सीमित कर देना ठीक नहीं रहेगा।

बाद के समय में, विशेषकर भारत की स्वतन्त्रता के बाद, [illegible] का राष्ट्रप्रेम भी यथेष्ट नहीं समझा गया सिर्फ इसलिए कि वे नरमदली और उदारवादी थे और जन आंदोलन में विचार से सहमत नहीं हो सकते थे। उनके समय में भारत के राजनीति के क्षेत्र में समाजवाद का प्रवेश नहीं हुआ था। अगर वे पच्चीस वर्ष और जीते तो उग्र दल और भटका, समाजवाद का भटका, समता और गरीबों के प्रति अपनी सारी सहानुभूति के बावजूद वे संभवतः इस राजनीतिक सिद्धान्त का विरोध करते।

लेकिन अतीत के किसी साहित्यकार का मूल्यांकन करते समय अर्वाचीन मापदण्डों का प्रयोग बेकार बात है। राजनीति के इतिहासकार भी यदि घटनाओं को उनके समय के परिप्रेक्ष्य में न देखें तो अपना अनाड़ीपन ही दिखायेंगे। इस ऐतिहासिक तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि भारत ने जिस ढंग से स्वतन्त्रता प्राप्त की है और उसके बाद विकास की जो दिशा ली है वह निस्सदेह महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व के परिणामस्वरूप हुआ है, नरम दल के लोगों द्वारा नहीं किया गया। लेकिन इस तथ्य से भी कोई इनकार नहीं कर सकता कि कांग्रेस की परवर्ती कार्यपद्धति की आधारभूमि नरम दल के नेताओं ने ही तैयार की थी। स्वतन्त्र भारत के संविधान के निर्माण में भी भारत के नरमदली नेताओं का योगदान महत्त्वहीन नहीं कहा जा सकता। अतएव इस समय अगर हम नरमदली और उदारवादी विचारधारा की हर बात से नफरत करेंगे तो केवल अपनी ही अप्रौढ़ मानसिकता का परिचय देंगे। यह ठीक है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के दौरान उदारवादियों के प्रति असहिष्णुता स्वाभाविक थी। लेकिन इस समय हमें अधिक ठंडे दिमाग से काम लेना चाहिए।

फिर यहाँ हमारा राजनीतिक इतिहास से सीधा सम्बंध भी नहीं है। हमें सिर्फ यह देखना है कि हम चकवस्त का प्रथमत. कवि के रूप में, और फिर सामाजिक संदेशवाहक कवि के रूप में, क्या मूल्यांकन करें।

अगर चकबस्त उर्दू कवियों की प्रथम पंक्ति में शामिल नहीं किये गये तो इसमें अधिकतर उन्हीं का दोष है। कविता उनकी रग-रग में बसी थी लेकिन उन्होंने अपने मन की आवाज पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना देना चाहिए था। वे ढेर सारा साहित्य रच सकते थे लेकिन उन्होंने बहुत-थोड़ा साहित्य रचा। वे जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को अधिक विकसित रूप में रख सकते थे और उर्दू की दार्शनिक कविता के लिए एक नया क्षेत्र खोल सकते थे किंतु उन्होंने अपने बुजुर्गों और गुरुओं से सीखी हुई बातों का प्रचार भर किया। कलात्मक सृजन की प्रेरक शक्तियों की उन्हें अच्छी पहचान थी और वे अपनी आलोचनात्मक क्षमता के बल पर उर्दू में नयी साहित्यिक विचार-धारा का प्रादुर्भाव कर सकते थे किंतु उन्होंने अपने समकालीन या अपने समय के कुछ ही पहले के गिने-चुने साहित्यकारों के चलते-फिरते मूल्यांकन तक ही अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा को सीमित रखा।

फिर भी उन्होंने अपनी थोड़ी-सी रचनाओं ही में राष्ट्रप्रेम और साम्प्रदायिक ऐक्य के अलावा बहुत कुछ छोड़ा है। पिछले पृष्ठों में इसकी कुछ झलकियाँ दी गई हैं। अगर विद्वान आलोचक कुछ अधिक ध्यान दें तो इस निराले कवि में से कई और विचार बिन्दु निकाल सकते हैं।

दुर्भाग्य से इस समय जो कुछ हो रहा है वह इसकी विपरीत दिशा में है। लगता है, हम चकवस्त को भूल जाने पर तुले हैं। सब लोग मानते हैं कि चकबस्त राष्ट्रप्रेम के महान कवि थे और सुकवि भी थे। मगर जब बच्चों को राष्ट्रप्रेम के गीत सिखाने का प्रश्न उठता है तो हम चकबस्त की कविताओं की उपेक्षा कर देते हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि हम इस उद्देश्य के लिए एक ऐसे कवि की—जिसने अपने बाद के जमाने में पुकार-पुकार कर कहा था कि राष्ट्रवाद मानव प्रगति में बहुत बड़ी बाधा है—प्रारंभिक और कलात्मक दृष्टि से अनगढ़ कविताओं को अपनाये हुए हैं।

क्या हम इन दोनों महाकवियों में से किसी के साथ भी न्याय कर रहे हैं?

ग्रंथ-सूची

1. सुब्हे-वतन : (चकबस्त का कविता संग्रह), इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, 1926

2 कुल्लियाते-चकबस्त : (सम्पादक) कालीदास गुप्ता 'रिज़ा', साकार पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1981

3 मज़ामीने-चकबस्त : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1955

4 मआरिकए-शाइरी-चकबस्त : (सम्पादक) मुहम्मद शफ़ी शीराज़ी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1942

5 चकबस्त और बाक़ियाते-चकबस्त : कालीदास गुप्ता 'रिज़ा', विमल पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1979

6 कमला. (चकबस्त द्वारा रचित नाटक) प्रकाशक, किशन प्रसाद कौल, जी पी वर्मा प्रेस लखनऊ, 1915

7. यादगारे-चकबस्त : आनन्द नारायण मुल्ला, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1939

8 चकबस्त—हयात और अदबी ख़िदमात : अफ़ज़ाल अहमद, चौदी-ख़ाना, आगा मीर, लखनऊ से प्रकाशित, 1975

9 मजमूअए-बहारे-गुलशने-कश्मीर : (सम्पादक) राधे नाथ कौल 'गुलशन', इलाहाबाद से प्रकाशित, 1939

10 लखनऊ का दबिस्ताने-शायरी : अबुल्लैस सिद्दीक़ी, शायरी अदबी दुनिया, उर्दू बाज़ार, दिल्ली, 1955

11 मुक़द्दम-ए-शेरो-शायरी : अल्ताफ़ हुसैन 'हाली', प्रकाशक, राम नारायण लाल, इलाहाबाद, 1962

12. दीवाने-हाली · प्रकाशक, राम नारायण लाल, इलाहाबाद, 1955

13. हयाते-जावेद : अल्ताफ़ हुसैन 'हाली', अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद), दिल्ली, 1939

भारतीय साहित्य के निर्माता

इस पुस्तकमाला में अब तक हिन्दी लेखकों पर प्रकाशित विनिबन्ध

कबीर	प्रभाकर माचवे
केशवदास	जगदीश गुप्त
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'	नरेशचन्द्र चतुर्वेदी
चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'	मस्तराम कपूर
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानंद श्रीवास्तव
दादू दयाल	रामबक्ष
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
निराला	परमानंद श्रीवास्तव
प्रेमचन्द	प्रकाशचन्द्र गुप्त
फणीश्वरनाथ रेणु	सुरेन्द्र चौधुरी
बाबूराव विष्णु पराड़कर	ठाकुरप्रसाद सिंह
बिहारी	बच्चन सिंह
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
महावीरप्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
मोहन राकेश	प्रतिभा अग्रवाल
यशपाल	कमला प्रसाद
रांगेय राघव	मधुरेश
रामनरेश त्रिपाठी	इन्दरराज बैद 'अधीर'
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
वृन्दावनलाल वर्मा	राजीव सक्सेना
श्यामसुन्दर दास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्राकुमारी चौहान	सुधाकर पाण्डेय
सुमित्रानन्दन पन्त	कृष्णदत्त पालीवाल
श्रीधर पाठक	रघुवंश
हरिऔध	मुकुन्ददेव शर्मा